सम्राट्

विक्रमादित्य

[भारत के सुनहले इतिहास की एक सुन्दर झांकी]

विराज

पुस्तक-संसार
७, कोल्हापुर हाउस, सब्जीमण्डी, दिल्ली.

प्रकाशक:
पुस्तक-संसार
७, कोल्हापुरहाउस, सब्जीमंडी
दिल्ली.
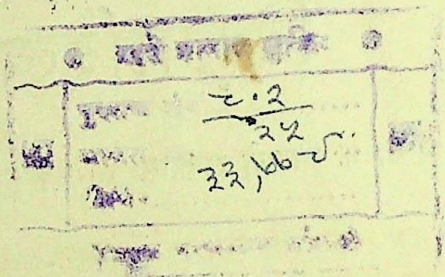
प्रथमावृत्ति	मूल्य
२०००	१।।)

मुद्रक:
अर्जुन प्रेस,
श्रद्धानन्द बाजार
दिल्ली.

प्रकाशक का वक्तव्य

जब हमने श्री विराज की 'आजाद हिन्द का तिरंगा झण्डा' नामक रचना प्रकाशित की थी, तब हम लाहौर में थे और आज हम उनकी 'सम्राट् विक्रमादित्य' दिल्ली से प्रकाशित कर रहे हैं, यह समय का व्यंग नहीं तो क्या है? राजनीतिक आँधी ने हमें लाहौर से उड़ाकर यहाँ ला पटका है। देश का विभाजन एक राजनीतिक भूल थी या नहीं, इसका अन्तिम निर्णय तो इतिहास ही करेगा, परन्तु जिन्होंने विभाजन की मांग की थी अब उन्हें भी उसके औचित्य पर संदेह हो रहा है।

और चाहे जो हो, किन्तु विभाजन ने हमें बदल दिया है और यह परिवर्तन किस दिशा में है, यह 'आजाद हिन्द का तिरंगा झण्डा' तथा 'सम्राट् विक्रमादित्य' की तुलना से स्पष्ट हो जायगा। पहले हम शान्ति, प्रेम, अहिंसा और क्षमा के समर्थक थे, किन्तु आज हम न्याय और केवल न्याय के समर्थक बन गये हैं। आक्रान्ता को, अपराधी को, अत्याचारी को दण्ड अवश्य मिलना चाहिये, उसमें कोई रियायत, कोई दया, या क्षमा नहीं की जानी चाहिये।

आज सारे राष्ट्र को हम यही संदेश सुना देना चाहते हैं कि जो पराजय हमारी हुई है, जो अपमान हमारा हुआ है, वह हमारी दया,क्षमा और निर्बलता के कारण हुआ है इस राष्ट्रीय अपमान को हमें भूल नहीं जाना है, इसकी हमें उपेक्षा नहीं कर देनी है परन्तु इसे तो हमें राष्ट्रीय कोष को तरह संभाल कर रखना है। यह हमारे युवकों के हृदय में वीरता तथा उत्साह की आग लगाने में समर्थ हो ; इससे हमें सशक्त बनने की अदम्य प्रेरणा मिले और एक दिन आये कि हम पश्चिमोत्तर प्रदेश में हुए अपने घोर अपमान का समुचित बदला ले सकें। राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया ही जाना चाहिये; उससे पहले तक वह हमारे मस्तक पर कलंक की भांति लगा रहेगा और हम कहीं भी सिर ऊंचा करके चलने लायक नहीं होंगे।

पुस्तक-संसार लाहौर से दिल्ली आ गया है; क्षति हमें पर्याप्त उठानी पड़ी है; परन्तु जो एक प्रचण्ड भावना हममें जाग उठी है, वह हमें एक नई निधिके रूपमें मिल गई है। इसलिये अब हमारा काम रुकेगा नहीं; हमें विश्वास है कि कठिनाइयों और मुसीबतों के बीच में से हम अपना मार्ग बना लेंगे। और जिस उद्देश्य को लेकर पुस्तक-संसार की स्थापना हमने की थी, उसकी आवाज़ हम बराबर जनता तक पहुंचाते रह सकेंगे।

परन्तु इसके साथ ही हम जनता से भी सहयोग की आशा रखते हैं; जिस उत्साह के साथ हमारे पहले प्रकाशनों का स्वागत होता रहा है आशा है उसकी अब भी कमी नहीं रहेगी।

हमारा मन्तव्य

सम्राट् विक्रमादित्य भारतीय इतिहास के सर्वाधिक प्रतापी राजाओं में से एक थे। जिस प्रकार भारतीय प्रजा ने राम और कृष्ण की स्मृति को अनेक पर्वों द्वारा स्थायी बना दिया, उसी प्रकार विक्रम-संवत् की स्थापना करके विक्रमादित्य की स्मृति को भी अमिट कर दिया है। सिवाय इन तीन महापुरुषों के जनता ने और किसी को इस प्रकार का सम्मान नहीं दिया।

परन्तु आज हमारे दुर्भाग्य की सीमा नहीं। सम्राट् विक्रम के नाम, संवत तथा कुछ किंवदन्तियों के अतिरिक्त हमें उनके विषय कुछ भी नहीं मालूम। मध्यकाल के धर्मान्ध मुसलमानी आक्रमणों ने हमारे इस विषय का सारा साहित्य नष्ट कर दिया है। और उसके बाद आये अंग्रेज तथा अन्य विदेशी इतिहासकार! ये लोग इतिहास के क्षेत्र में ठीक ऐसे थे मानों केसर के खेत में कुछ गधे खुले छोड़ दिये गये हों। इन्होंने जो उच्छृंखल उत्पात मचाया, उसकी पर्याप्त निन्दा कर सकना असंभव है। एक ओर इन्होंने वेदों को गड़रियों के गीत बताया, तो दूसरी ओर राम को एक किसान और सीता को हल की नोंक कहा। कहा कि कृष्ण तो कई हो चुके हैं; कहा कि रामायण और महाभारत की घटनाएं घटी ही नहीं; इनके कभी नायक हुए ही नहीं; ये तो

कपोल कल्पनाएं हैं, कहानियों और उपन्यास सरीखी मनोरञ्जन की वस्तुएं हैं। इन्हीं विद्वानों ने अज्ञान के आवरण को फाड़कर घोषणा की कि विक्रमादित्य नाम का कोई राजा कभी नहीं हुआ। और उनकी विद्वता से विस्मित तथा चौंधियाए हुए भारतीय मनीषियों ने कहा: 'इसे कहते हैं अनुसन्धान! असत्य प्रवादों तथा मिथ्या किंवदन्तियों के ढेर में से सत्य को ढूंढ निकालना आसान नहीं है! इस महान कार्य को निष्पक्षता से यही लोग कर सकते हैं।' अर्धशिक्षित जनता ने उनकी बात ऊपरी मन से मान तो ली, पर उसके मन में ठीक तरह से जमी नहीं।

फिर एकाएक कोलाहल हुआ। एक और विदेशी विद्वान ने अपने कई वर्ष नष्ट करने के बाद लोगों को बताया कि विक्रमादित्य तो एक नहीं, कई हुए हैं। प्रजा ने कहा कि 'हम तो पहले ही कहते थे कि जरूर कुछ ऐसी ही बात है।' परन्तु मनीषी ने कहा 'तुम तो अपनी ही हांकते लगते हो। पहले पूरा सुन तो लो। विक्रमादित्य किसी राजा का नाम नहीं था, बल्कि यह एक उपाधि थी, जो कि अनेक राजाओं ने धारण की थी।' प्रजा और भी गहरे विस्मय में डूब गई। 'तो क्या हमारी सब धारणाएं मिथ्या थीं' उसने सोचा।

प्रारम्भ तो हो ही चुका था। अब क्या था; इतिहासकारों ने ऐसी उछल कूद और धमाचौकड़ी मचानी शुरू की कि जिसकी सीमा न रही। एक ने कहा, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य था। एक की राय बनी कि पुष्यमित्र विक्रमादित्य था। एक और कफन फाड़कर चीखा कि गर्दभिल्ल का बेटा विक्रमादित्य था। और यह सब लोग बीच बीच में एक दूसरे की विद्वत्ता की भी प्रशंसा करते जाते थे। हतवाक् हुई प्रजा इस अभिनय को देख कर और भी चकित हो गई।

ऐसी प्रगाढ मुग्धावस्था में हमने 'सम्राट् विक्रमादित्य' का अंकन आरम्भ किया। विद्वान मित्रों ने सुना तो पूछा 'भाई, अपने नाटकमें तुमने किसे विक्रमादित्य माना है ?' हमने समझा कि विस्मयजनक बातें करने का जमाना है, अतः उत्तर दिया 'भगवान बुद्ध को !'

'मजाक करते हो !' कह कर जब उन्होंने अविश्वास सा किया, तो हमसे सहा नहीं गया। 'मजाक हम करते हैं या तुम ? इतने पढ़े लिखे होकर तुम पूछते हो कि तुमने विक्रमादित्य किसे माना हैं ? अपनी विद्या का दम्भ त्याग कर किसी गांव में जाओ और किसी अनपढ़ गंवार से, जो भैंसें चरा रहा हो या बैलों को हांक रहा हो, जाकर पूछो कि 'भाई, मैं तुझसे भी ज्यादा बेवकूफ हूँ; कृपा कर के मुझे बता दे कि वीर विकरमाजीत कौन था ?' वह तुम्हें जिस परम प्रतापी सम्राट् का हाल सुनाएगा, उसी विक्रमादित्य को हमने विक्रमादित्य माना है और किसको विक्रमादित्य मान लेते ?'

हमारे विद्वान् मित्रों ने हमें अविद्वान् मान लिया है और मान लिया है कि हम बहुत जल्दी विश्वास कर लेतें हैं, जातीय गौरव के पक्षपात से हमारी आखें मिची जारही हैं इसलिये सत्यासत्य का विवेक हमारा जाता रहा है और 'सम्राट् विक्रमादित्य 'लिखने से पहले हमने इतिहास पर कुछ 'मेहनत' नहीं की।

हमने भी इन सब बातों को सही मान लिया है और यह भी मान लिया है कि इतिहास पर 'मेहनत' करने से बढ़कर बेहूदा काम और कोई नहीं है। इतिहास भी वह इतिहास, जो किसी

खुदाई में दो नये सिक्के मिल जाने पर अपने सारे मन्तव्य बदल लेता हो; जो मोहंजोदड़ो की एक खुदाई के बाद एक क्षण में भारतीय संस्कृति के इतिहास को पांच हजार वर्ष पहले की ओर धकेल देता हो; जिसमें एक विषय में पांच महामहोपाध्याय और डाक्टर पांच बातें कहते हों, और उसके बाद भी जो कुछ कहते हों, वह महत्वशून्य हो; उस इतिहास से बढ़कर व्यर्थ और कुछ हो नहीं सकता।

इस 'इतिहास' के लिए समस्त भारतवर्ष की प्रजा द्वारा यत्न से संभाली गई परम्परा की, जिह्वाओं पर काल-पथ को पार करके चली आ रही गाथाओं की उपेक्षा कम से कम हम नहीं कर सकते। हमारे लिए सारे विदेशी विद्वान् झूठे हैं, हमारे लिये सारे देशी विद्वान् मूर्ख हैं, यदि वे कहते हैं कि विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ। हमारे लिये वह अनपढ़ प्रजा ही सच्ची है, जो उस प्रजावत्सल महापराक्रमी सम्राट् की स्मृति में चैत्र के चैत्र एक संख्या की वृद्धि करती चली जाती है; जो उसकी वीरता की, न्याय की तथा बुद्धिमत्ता की गाथाएं अपने पीछे अपनी सन्तान के पास धरोहर के रूप में छोड़ती जाती हैं। हमारे लिए तो २००० वर्ष पूर्व एक विक्रम हुआ था, जिसने शस्त्रबल से अत्याचारी शकों को हराया था; हिन्दूकुश तक उसने दिग्विजय की थी; रात को वेश बदल कर वह प्रजा की तथा राजसेवकों की गतिविधि का निरीक्षण करता था; उसकी सभा में नवरत्न थे; वेताल

से उसकी मित्रता थी; बौद्धों से उसने बदला लिया था।

उसकी असाधारण विजयों के कारण ही प्रजा ने उसे इतना मान दिया कि उसके नाम से संवत् चलाया गया और बिना किसी भी शिलालेख या लोहस्तम्भ के भारत के गांव गांव में लोग उसे उन सम्राट् अशोक तथा सम्राट् समुद्रगुप्त की अपेक्षा अधिक जानते हैं, जिनके कि लोहस्तम्भ एवं शिलालेख देश के विभिन्न भागों में ऐतिहासिकों को प्राप्त हुए हैं।

१ पौष २००४] —विराज.

पात्र

विक्रमादित्य—अवन्ति का राजा, सम्राट्

वररुचि—महामंत्री

कालिदास—महाकवि

अजयगुप्त—सन्यासी वेशधारी विक्रम का बाल्यमित्र

विग्रहवर्मा—अवन्ति का महानायक

जयसेन—नगररक्षक सेना का नायक

नरवर्मा—द्रोही, अवन्ति का सेनापति

बलगुप्त—विक्रमादित्य के अंगरक्षकों का नायक

वेताल—एकान्तवासी तान्त्रिक

कात्यायन—बौद्ध आचार्य, अहिंसा-प्रचारक

हौमवर्का—शक सेनापति

चष्टप—शकों का प्रधान सेनाध्यक्ष

कुछ शक सेनाध्यक्ष सैनिक, प्रतीहारी तथा कुछ बालक इत्यादि।

सम्राट् विक्रमादित्य

दृश्य—१

स्थान—अवन्ति की राजसभा

समय—सायंकाल

राजा और सभासद् यथास्थान बैठे हुए हैं। महाकवि कालिदास का कवितापाठ चल रहा है।

कालिदास—असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेः

अनासवाख्यं करणं मदस्य,

कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं

बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे । *

[साधुवादों से सभा गूंज उठती है। 'वाह, वाह !' 'क्या खूब !' "चमत्कार, चमत्कार !' की आवाजें सुन पड़ती हैं।]

---

* जो ऊपर से न पहना जाने वाला शरीर का आभूषण है, आसव न होने पर भी जो मद से भर देने वाली है, जो कामदेव का पुष्पों के अतिरिक्त नया अस्त्र है वह शैशव से अगली अवस्था (यौवन) उसकी आ पहुंची।

विक्रमादित्य— बहुत सुन्दर कहा कालिदास ! यौवन की ऐसी सुन्दर उत्प्रेक्षा कभी नहीं सुनी। 'कामस्य पुष्पव्यतिरिक्त-मस्त्रं' में तो तुमने कलम ही तोड़ दी। बहुत सुन्दर है। एक बार फिर सुनाओ।

कालिदास— [विनीत भाव से प्रशंसा स्वीकार करते हुए]

असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेः
अनासवाख्यं करणं मदस्य
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं
बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे !

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं
सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि
वपुर्विभक्तं नवयौवनेन । +

[फिर 'वाह वाह !' के साधुवाद का कोलाहल उठता है, परन्तु कालिदास बिना रुके आगे सुनाता जाता है।]

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या
वलित्रयं चारु बभार बाला,
आरोहणार्थं नवयौवनेन
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ।★

+ कूची के स्पर्श से जैसे सुन्दर चित्र निखर उठा हो; सूर्य की किरणों से जैसे कमल खिल गया हो। इस प्रकार उसका चारों अङ्गों से सुशोभित शरीर नवयौवन से उभर उठा।

★ उसकी कमर अत्यन्त पतली थी और पेट पर तीन उभार थे; मानों चढ़ने के लिए नवयौवन ने कामदेव की सीढ़ी बना ली हो।

चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुंक्ते
पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्
तस्या मुखं तु प्रतिपद्य लोला
द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ।※

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषं–
मधीर-विप्रेक्षित-मायताक्ष्याः
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्य–
स्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ।०

[साधुवाद का बहुत कोलाहल मचता है । कालिदास पढ़ना बन्द कर देता है ।]

विक्रम—कालिदास, वर्णन में तो तुमने हद ही करदी है। इतना सुन्दर भी काव्य हो सकता है इसकी तो कल्पना भी नहीं की थी । बहुत सुन्दर रहा ।

महामंत्री—कवि जीं, आपने सचमुच चमत्कार कर दिया । पर अब लोकरंजन के लिए कुछ प्राकृत लोकभाषा में भी कहिये । जनता सुन कर कृतार्थ हो ।

※ लक्ष्मी चन्द्रमा में जाती है तो कमल का आनन्द नहीं मिलता; कमल में जाती है तो चन्द्रमा का सुख नहीं मिलता;परन्तु उसके मुख में आकर लक्ष्मी को दोनों का ही सुख प्राप्त हुआ ।

० खिले हुए नीलोत्पल से भी सुन्दर उस बड़ी बड़ी आंखों वाली के चंचल कटाक्षों को देखकर मन में होता था कि ये उसने हिरनियों से सीखे हैं या हिरनियों ने उससे ।

सूचना— ये सब श्लोक महाकवि कालिदास के अमर काव्य 'कुमार-संभव' के प्रथम सर्ग के हैं ।

विक्रम—हां हां, कालिदास कुछ लोकभाषा में भी कहो।

कालिदास—आपकी आज्ञा चाहिये महाराज !

सुनिये—

उसके वे गाल गुलाबी हैं !
मैंने प्राची में ऊषा को सिन्दूर लुटाते देखा है,
मैंने सावन में संध्या को कुन्दन बिखराते देखा है,
औ कुरुक्षेत्र में देखे हैं मैंने विकसित कमलों के दल,
पर अब तक देखी नहीं कहीं ऐसी अद्भुत शोभा उज्ज्वल !
उनकी आभा पंजाबी है !

विक्रम—खूब ! बहुत सुन्दर कहा है। क्या उत्प्रेक्षा की है ! और वहां भी टिके नहीं !

कालिदास—(विनय प्रदर्शित करते हुए)

चंचल उसके सुन्दर लोचन !
वे मीन सदृश, काले काले, मृगशिशु के से भोले भाले,
दो भरे सुधा से देव चषक या भरे सुरा के दो प्याले,
वे जिसे निहारें दया सहित, होता वह उनमें प्रतिबिम्बित,
वह फिर उनका ही हो जाता, खो जाता उसका अपनापन !

महामंत्री—वाह, क्या बात कही है!

कालिदास—(बिना रुके)

मैंने उन भोली आंखों को तूफान उठाते देखा है,
उनके बिजली सी दमकाते औ आग लगाते देखा है,
औ कभी स्तब्ध हो करका से मुक्ता बरसाते देखा है,
मैं तब समझा इस नील गगन से है उनकी कितनी समता!

[फिर सब ओर से साधुवाद का कोलाहल भर उठता है। कालिदास कुछ देर के लिए रुक जाता है। कोलाहल थमने पर]

उसकी गति, चाल निराली है !!

वह वन-मृगियों की चंचलता,
गज-कामिनियों की मन्थरता,
वह लचक लताओं की कोमल,
फिर भी कुछ अद्भुत सी दृढ़ता
है साथ साथ लेकर चलती।
उसके अपने आकर्षण से
है पथ स्वयमेव खिंचा आता;
तब लगती उसकी चाल तेज;
पर चला हुआ पथ पीछे का
जो छूट रहा, ममता से भर
है उसे नहीं बढ़ने देता,
तब लगती उसकी गति मन्थर!

[साधुवाद के कोलाहल से सभा फिर गूंज उठती है। तभी द्वारपाल प्रवेश करता है]

द्वारपाल—महाराज की जय हो! आचार्य कात्यायन पधारे हैं।

[सारी सभा व्यस्त हो उठती है। राजा और महामंत्री आचार्य के स्वागत के लिये जाते हैं और आचार्य को लेकर वापिस आते हैं।]

आचार्य—[निर्दिष्ट आसन पर बैठकर] वत्स, धर्म के प्रचार में शक्ति लगाओ। संसार का कल्याण हो

(विक्रम चुप रहते हैं)

सब धर्मों में अहिंसा श्रेष्ठ है। भगवान तथागत ने प्राणिमात्र को कष्ट न देने पर बड़ा बल दिया है। हिंसा से हिंसा की उत्पत्ति होती है। हिंसा से दूसरे को कष्ट और अपने आपको पश्चात्ताप होता है।

(सारी सभा शान्त होकर सुनती रहती है।)

संसार में पहले ही बड़ा दुःख और क्लेश भरा हुआ है। उसमें और वृद्धि करना बुद्धिमान को उचित नहीं। कष्ट को सहकर कष्ट पर विजय पाई जा सकती है, कष्ट का प्रतिरोध करके नहीं। वह दिन आये कि जब संसार तथागत के चरण-चिन्हों पर चल सकने में समर्थ हो, हिंसा समाप्त हो और दुःख का समूलोच्छेद हो। वत्स, अपनी शक्तियां इसी ओर लगाओ।

(विक्रम चुप रहते हैं। कोषाध्यक्ष बहुत सी दक्षिणा लाता है। विक्रम वह सब आचार्य को समर्पित कर देते हैं)

विक्रम—आपके दर्शन और उपदेश से मैं परम कृतार्थ हुआ हूँ। आप सरीखे महान पुरुषों से ही यह राज्य गौरवान्वित है। कुछ आज्ञा कीजिये।

आचार्य—वत्स, और क्या आज्ञा करूं। धर्म की शरण में रहो। तथागत के बताए मार्ग चलने का यत्न करो, जिससे विश्व का कल्याण हो। अपनी तलवार मुझे दे दो, जिससे हिंसा समाप्त हो। सम्राट् अशोक ने भी शस्त्र त्याग कर प्रेम से संसार को जीता था।

[विक्रम क्षणभर महामंत्री के मुख की ओर ताकते हैं और आंखों ही आंखों में कुछ बात करके तलवार आचार्य के चरणों के पास रख देते हैं। सभा के एक भाग से 'सम्राट्

की जय हो' 'तथागत की जय हो' का जयघोष होता है।]

आचार्य—तुमने यह तलवार त्याग दी है। इसका अर्थ है कि तुमने हिंसा त्याग दी है। तुम्हारी सुमति स्थिर हो। विश्व का कल्याण हो!

(नेपथ्य में)

हम शकों द्वारा पीड़ित गुजरात की प्रजा हैं। हमें सम्राट् के पास जाने दो

(पर्दा गिरता है।)

दृश्य—२

स्थान—एक गांव के बाहर का स्थान

समय—दोपहर

[कुछ शक अनेक ग्रामीणों को घेरे खड़े हैं। ग्रामीणों में बुड्ढे और बच्चे भी हैं।]

एक शक—गांव सारा जला दिया न ?

दूसरा शक—पूरी तरह स्वाहा कर दिया। बहुत से आर्यों की आहुति भी दे दी।

तीसरा शक—और स्त्रियां सब की सब व्यापारियों को बेच दी गई हैं। बहुत से आदमी व्यर्थ ही मारे गये, नहीं तो उन के भी अच्छे पैसे उठ आते।

पहला शक—(ग्रामीणों से) क्यों रे कुत्तो, कहां गई अब तुम्हारी बहादुरी ? तुम अकड़ते किस बल पर थे ? (एक बुड्ढे को लात मार कर) तू जीना किस लिए चाहता है ?

दूसरा शक—तेरे तो दो ही दांत बाकी हैं। तेरे लिए ये अब बेकार हैं। [मुख पर मुक्का मारता है।] अहा हा, अब ठीक है ! 'दशन-विहीनं जातं तुण्डम्' ।*

पहला शक—(एक और लात मार कर) 'तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्' ♣। (एक बालक को पकड़ कर) अहा हा, कैसा

---

* मुख दांतों से शून्य हो गया।

♣ फिर भी जीने की आशा को नहीं छोड़ता।

प्यारा बच्चा है ! (बालक को जोर से जमीन पर धकेल देता है ।) सांप का बच्चा भी इससे ज्यादा सुन्दर होता है ।

दूसरा शक—पर आखिर ये अपना धर्म क्यों नहीं छोड़ना चाहते ?

पहला शक—कौन नहीं छोड़ना चाहता ? (हर शक से पूछता है, पर कोई नहीं छोड़ना चाहता ।) अच्छा, इन सब को अगले गांव में ले चलो । जो हमारे धर्म को स्वीकार करलें, वे ठीक हैं, बाकी सबको अग्निदेव की बलि दे दो । इनके ही झोंपड़ों का फूस... आजकल सर्दी के दिन भी हैं ।

तीसरा शक—इनके गावों को जलाते २ भी तो हम थक गये । पता नहीं इन नीचों ने कितने गांव बसाए हुए हैं । बस, एक मजा है कि यहां राजा कोई नहीं है ।

पहला शक—ऊंह, राजा ! इनका कोई राजा होता भी तो वह क्या कर लेता ? [थोड़ा रुक कर] लूटो, सैनिको, खूब लूटो । जो कुछ तुम्हें रुचे उसे लूट लो । जो लड़े उसे मार दो । जो कहना न माने उसे जिन्दा जला दो । जीवन विजय और आनन्द के लिए बना है ।

तीसरा शक—[एक आर्य युवक की गर्दन पर तलवार तान कर] क्यों रे, अब तुझे मालूम होता है कि मनुष्य शरीर नश्वर है या नहीं ?

आर्य युवक—मनुष्य शरीर नश्वर है, यह तो हम पहले से जानते हैं ।

तीसरा शक—तुम जानते ही हो, समझते नहीं हो । तू अभी

अनुभव से जान लेगा। [तलवार मारता है। युवक मर जाता है। और लोगों को दिखाकर] देखो, तुम्हें पार्थिव शरीर की नश्वरता समझाने के लिए बेचारा स्वयं बलिदान होगया। कम से कम अब तो तुम्हें समझ लेना चाहिये कि पार्थिव शरीर नश्वर है। हमारी आज्ञा का भंग करते ही न जाने यह कब नष्ट हो जाय। इस लिए आज्ञापालन में क्षण भर भी विलम्ब मत करो। चलो सब के सब कुत्तो।

[पर्दा गिरता है।]

दृश्य--तीसरा

स्थान—विक्रमादित्य का शयनागार

समय—मध्य रात्रि

[सम्राट शय्या पर सोये हुए हैं। कमरे में धुंधला सा प्रकाश छा रहा है। एक काली छाया कमरे में प्रवेश करती है। विक्रम स्वप्न देख रहे हैं।]

छाया—उठो, विक्रम, उठो !

विक्रम—[सोते सोते] तुम कौन हो और मुझे किसलिए उठाते हो ?

छाया—मैं काल हूं ।

विक्रम—तो फिर मुझे इस अकाल में किसलिए उठाते हो ?

छाया—अकाल नहीं है विक्रम, अब जागने का काल आ पहुंचा है। मैं स्वयं जो आ पहुंचा हूँ।

विक्रम—(सोये ही सोये) जागने का समय आ पहुँचा ? लो, मैं जाग गया। अब क्या करना होगा ?

छाया—वहां देखो ! उस ओर क्या दीखता है ?

विक्रम—(सोये ही सोये) वहां ? वे लोग प्रजा पर अत्याचार कर

रहे हैं। वे गांवों को जला रहे हैं, निरीह और निरपराध लोगों की हत्या कर रहे हैं, स्त्रियों और बच्चों का खून पानी की तरह बहा रहे हैं। ये नरपिशाच कौन हैं ?

छाया—ये शक और हूण हैं। समस्त देश की आर्यप्रजा आज इनके हाथों त्रस्त और पीड़ित है। इनका कोई धर्म नहीं है, इनकी कोई नैतिकता नहीं है, केवल बर्बरता और नृशंसता इनकी विरासत है। इन्हें रास्ते पर लाना तेरा काम है।

विक्रम—मेरा काम ? मैं इन्हें रास्ते पर कैसे ला पाऊंगा ? इन संस्कृतिशून्य पशुओं को मैं सभ्य कैसे बना सकूंगा ? क्या अहिंसा से ये सुधर सकेंगे ? आचार्य कात्यायन ने कहा है कि अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है।

छाया—आचार्य कात्यायन की बात छोड़; वह सन्त हैं पर तू तो राजा है। राजा के लिए चाणक्य का आदेश क्या है, वह तुझे मालूम है ?

विक्रम—क्या ?

छाया—'शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः,'★ और 'दण्डेन गोगर्दभौ'❀ अर्थात पशु और दुर्जन कान से नहीं समझते, पीठ से समझते हैं। राजधर्म दण्ड से शासन करने का है। अतः अहिंसा को त्याग कर राज-दण्ड हाथ में ले और इन दस्युओं का दमन कर।

★ दुर्जन उलट कर अपकार करने से भले ही रास्ते पर आजाय, उपकार से नहीं आ सकता।

❀ बैल और गधे डण्डे से काबू आते हैं।

विक्रम—पर दमन कैसे हो ? मेरी तलवार तो आचार्य ने ले ली है।

छाया—तलवार तेरे लिए मैं लाया हूँ। अत्याचार और अन्याय का विनाश करने के लिये तू इस तलवार को धारण कर। पुराने वीरों का आशीर्वाद तेरे साथ है।

(तलवार बिस्तर के पास रखकर छाया लुप्त हो जाती है। और साथ ही विक्रम की नींद खुल जाती है। वह उठकर बैठ जाता है।)

विक्रम— क्या मैं स्वप्न देख रहा था ? कैसा भयंकर स्वप्न था ! गांव जल रहे थे; स्त्रियां रो रहीं थीं; युवकों की लाशों के ढेर लगे थे। स्त्रियों और बच्चों का करुण क्रन्दन तो जैसे अब तक कानों में गूंज रहा है। (थोड़ा रुककर और सोच कर) पर कोई मेरे पास खड़ा था; मुझे जगा रहा था और मुझे तलवार दे रहा था। (तलवार की ओर देखकर) ऐं ! यह तलवार यहां कहां से आई ? मेरी तलवार तो कल आचार्य कात्यायन ने ले ली थी, ... फिर यह तलवार कैसी है ? (जोर से) कोई है !

सैनिक— (प्रवेश करके) सम्राट की जय हो !

विक्रम— दीप जलाकर प्रकाश करो।

(प्रकाश होता है। तलवार को हाथ में लेकर उसकी ओर देखते हुए) क्या सुन्दर तलवार है ! मैंने ऐसी तलवार आज तक नहीं देखी। (सैनिक से) इस कमरे में कोई घुसा था ?

सैनिक— जी नहीं, मैं तो निरन्तर बाहर पहरा दे रहा हूँ। कोई अन्दर नहीं आया।

विक्रम— अच्छा, तुम जाओ। (सैनिक जाता है) आज महाकाल ने मुझे जगाया है, स्वयं मुझे तलवार प्रदान की है; आज से जीवन की धारा एक नई दिशा में मुड़ेगी। मैं अपने हृदय में कुछ परिवर्तन अनुभव कर रहा हूँ। (बाहर की ओर देखकर) प्रभात हो चला प्रतीत होता है।

(नेपथ्य में)

भारत का क्या हाय रंग हो रहा है ?
कोई रो रहा है, कोई सो रहा है !
है मग्न सुख की तरंगों में कोई
औ लोहू से कोई नयन धो रहा है !

....

दृश्य—चौथा

स्थान–मुख्य सड़क

समय–ब्राह्म-मुहूर्त

[एक सन्यासी गाता हुआ जा रहा है।]

कोई रो रहा है, कोई सो रहा है!
है सपनों में कोई मगन मौज के,
आंखों के सपने कोई खो रहा है!
निर्बल के बल राम सोए पड़े है,
जालिम का बढ़ बढ़ सितम हो रहा है!
खुली छूट है तुझको कातिल मगर,
कांटे तू अपने लिए बो रहा है!
जागो, उठो, जागो ऐ सोने वालो,
देखो तो आखिर यह क्या हो रहा है?

[लोग घरों से निकल सन्यासी के साथ चलने लगते हैं और एक बड़ी भीड़ को लेकर सन्यासी चौराहे पर पहुँचता है। वहां पर भीड़ सभा में परिवर्तित हो जाती है। सन्यासी उपदेश देने लगता है।]

सन्यासी—अवन्ति के नागरिको, तुम यहां पर विलास की मोहनिद्रा में मग्न पड़े हो और तुमसे सिर्फ एक चिल्लाहट दूरी पर बर्बर शकों का नृशंस अत्याचार चल रहा है। क्या तुम्हारे आनन्दगीतों और उत्सवनृत्यों में आर्तजनों के करुण क्रन्दन का एक भी चीत्कार कभी बाधा नहीं डालता? क्या बलपूर्वक हरण की जाती हुई आर्य-युवतियों की शरविद्ध सारसी की सी चिल्लाहट तुमने कभी नहीं सुनी? क्या रात्रि के अन्धकार में शकों द्वारा जलाए गये गांवों से उठती हुई आग की लपटों से लाल होते आकाश पर कभी तुम्हारी दृष्टि नहीं पड़ी। और यदि पड़ी है तो अवन्ति इतनी निश्चिन्त क्यों है? क्या अवन्ति का शौर्य समाप्त हो गया? क्या यहां के योद्धाओं की बाहों में बल नहीं रहा?

एक श्रोता--अब तो यहां अहिंसा का राज है; बल और शौर्य का अब क्या काम!

सन्यासी-अहिंसा तपस्वी का धर्म है, योद्धा का नहीं, क्षत्रिय का नहीं। क्षत्रिय का धर्म है प्रजा का रक्षण।

दूसरा श्रोता—क्षत्रियों का सरदार राजा ही तपस्वी बन गया है। अपनी तलवार तो उसने कात्यायन महाराज को दे दी है, तो फिर हम क्या करें?

सन्यासी—राजा की चिन्ता राजा करेगा, अपनी चिन्ता तुम करो। तुम अपनी छाती टटोलो, देखो कि उसमें पीड़ित के दुःख से द्रवित और क्षुब्ध होने वाला हृदय धड़क रहा है या नहीं? उस हृदय में अत्याचार के विरुद्ध खौल उठने वाला आर्य रक्त दौड़ रहा है या नहीं? अपने शस्त्र संभालो नहीं

तो कल अवन्ति की सड़कों पर भी शकों और हूणों की पशुता का नंगा नाच हो रहा होगा।

[घोड़े पर सवार नगर-रक्षक प्रवेश करते हैं। उनका अध्यक्ष उनके साथ है।]

नगररक्षक—(घोड़े से उतरते हुए) बस करो यह हिंसा का उन्मत्त प्रचार। युद्ध और रक्तपात के बीभत्स दृश्यों को अवन्ति में घसीट कर लाने का प्रयत्न मत करो। ऐसे उत्तेजनात्मक भाषणों से शान्ति भंग होने की संभावना है।

सन्यासी—रक्तपात और युद्ध इस तरह के भाषणों से घसीट कर नहीं लाये जाते। वे तो स्वयं आते हैं। भारतवर्ष की शान्ति भंग हो चुकी है; निरुपाय प्रजा पर लुटेरे गुण्डे शकों ने अकथनीय अत्याचार किये हैं। उस अत्याचार के विरुद्ध जनशक्ति को संगठित करने से अगर शान्ति भंग होती है तो हो। उसकी मुझे परवाह नहीं है। प्रजा को बतलाना होगा कि उसके साथियों पर कैसी बर्बर नृशंसता की जा रही है।

नगर-रक्षक—तुम्हारे भाषण से अशान्ति फैलेगी। मैं तुम्हें बन्दी बनाता हूं। (सन्यासी को बन्दी बना लेता है।)

सन्यासी—भाइयो, मैं तुम तक घटनाओं का सत्य विवरण पहुंचाना चाहता था, पर अशान्ति से भयभीत कायर राजशक्ति मुझे तुम तक अपनी आवाज पहुंचाने देना नहीं चाहती। पर मैं तुम्हें बताए देता हूँ कि संकट बिलकुल सिर पर आ पहुंचा है। उससे अपनी और अपने भाइयों की रक्षा करने के लिये तुम राजशक्ति की ओर आंखें हरगिज मत फैलाना। अपने आप को संगठित करो, अपने आपको सशस्त्र करो, ऐसा न हो

कि राजशक्ति भी तुम्हारी रक्षा न करे और तुम स्वयं भी अपनी रक्षा न कर सको। ऐसा हरगिज मत होने देना।

(नगर-रक्षक सन्यासी को पकड़ कर ले जाता है ।)

एक श्रोता—साधू महाराज, बात तो ठीक कह रहे थे। क्योंकि अगर इस समय सचमुच कोई संकट अवन्ति पर आ पड़े, तो राजा में तो अपनी रक्षा करने का ही दम नहीं है। राज्य की वह क्या रक्षा करेगा ?

दूसरा श्रोता—संकट की बात बिलकुल सच है। मैंने कल बहुत से घबराए हुए लोगों को राजप्रासाद की ओर जाते देखा वे राजा से रक्षा की प्रार्थना करने जा रहे थे।

तीसरा श्रोता—अरे कहां का संकट ! ये तो थोड़े से शरारती लोग संकट संकट का शोर मचाकर प्रजा में अशांति फैलाने का यत्न करते रहते हैं। तभी तो नगर-रक्षकों ने उस सन्यासी को पकड़ लिया।

दूसरा श्रोता—पर फिर भी साधु कोई बुरी बात तो नहीं कह रहा था। संगठित और सशस्त्र होने को ही तो वह कह रहा था।

चौथा श्रोता—अरे ये संगठित और सशस्त्र लोग ही तो देश के लिए असली खतरा हैं। यही हम लोगों को लूट खायेंगे। संगठित और सशस्त्र होने का क्या मतलब ?

पहला श्रोता—इस समय पश्चिम दिशा से घनी काली घटाएं उठ रही हैं। शकों और हूणों की सेनाएं अगर यहां आ गईं तो सिवाय हमारे अपने संगठन के और कोई हमारी रक्षा

नहीं कर सकता। और फिर हमारे तो प्रत्येक नगर में राष्ट्रद्रोही बौद्ध और जैन बड़ी भारी संख्या में विद्यमान हैं। आज तो राजशासन इन्हें बड़े प्यार से पाल पोस रहा है और कल ये ही विश्वासघातक हमारी प्रजा के सिर पर तलवार खींच कर खड़े हो जायेंगे।

तीसरा श्रोता—तुमभी इन्हीं सन्यासी के साथी मालुम होते हो। हिंसा और पारस्परिक घृणा का प्रचार करके तुम देश को दुर्बल बनाना चाहते हो।

पहला श्रोता—भारतवर्ष जैसा कमजोर आज है वैसा इतिहास में कभी नहीं हुआ था! देश के एक बड़े भारी भाग पर बर्बर नृशंस लुटेरों के झुण्डों का शासन है। निरीह और निरपराध आर्यप्रजा उनके घृणिततम अत्याचारों का शिकार हो रही है और उन प्रदेशों से भागने को विवश हो रही है। दिनों दिन शक और हूण सेनाओं का संकट निकट और निकट आता जा रहा है। ऐसे समय देशद्रोहियों का देश में रहना ही देश की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इन देशद्रोही विश्वासघातकों के विरुद्ध घृणा का प्रचार किया ही जाना चाहिए। इनसे शून्य होने पर ही देश कुछ सशक्त हो सकता है। (बहुत से सुनने वाले अपनी सहमति प्रदर्शित करते हैं।

चौथा श्रोता—तुम जैसे लोगों को तो तुरन्त बन्दी बना लिया जाना चाहिए।

दूसरा—समय आ रहा है, पता चल जायगा कि कौन बन्दी बनाया जाता है।

(उसी समय पांच घुड़सवार सैनिक बड़ी तेजी से घोड़े दौड़ाते हुए राजप्रासाद की ओर निकल जाते हैं। लोग विस्मय से उन्हें देखने लगते हैं।)

पहला श्रोता—अवश्य कुछ दाल में काला है।

दृश्य—पांचवा

स्थान—राजप्रासाद

समय—पूर्वान्ह

[गुप्त मंत्रणाभवन में सम्राट् विक्रमादित्य महामंत्री के साथ मंत्रणा कर रहे हैं।]

विक्रम—अमात्यवर, अब आप इसी ढंग से सोचिये। मैं अपना निश्चय पक्का कर चुका हूँ।

महामंत्री—सो तो ठीक है महाराज! परन्तु इसके लिए सारी नीति में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा।

विक्रम—कोई बात नहीं। अब मैं समझता हूँ कि भरी राजसभा में कात्यायन को तलवार सौंपकर मैंने भूल की। अहिंसा का समर्थन मुझे नहीं करना चाहिए था।

महामंत्री—परन्तु तलवार न देना भी सरल नहीं था। कात्यायन की बात न मानने पर अवन्ति में विद्रोह हो जाता। विदेशियों की शह पाये हुए बौद्ध और जैन क्या कर डालते, कुछ

कहा नहीं जा सकता।

विक्रम—ठीक है! पर मैं यह स्थिति अब एक क्षण भी नहीं रहने देना चाहता। इन नीचों को प्रसन्न करने की कोशिश करते करते अब मैं ऊब चुका हूं। मैंने इन्हें खुश करने के लिए क्या नहीं किया? परन्तु ये प्रसन्न नहीं हुए। पर अब और नहीं। अब मैं इनसे उसी भाषा में बात करूंगा, जिसे ये खूब समझते हैं।

महामंत्री—पर सेनापति नरवर्मा पर भरोसा नहीं किया जा सकता। बहुत से सैनिक अधिकारी भी उसके साथ हैं।

विक्रम—यह मुझे मालूम है। परन्तु जयसेन पर आप भरोसा कर सकते हैं। सेना का सेनापतित्व आज मैं स्वयं ग्रहण करूंगा और नरवर्मा को बन्दी बनाऊंगा। बाकी अनभीष्ट लोगों को जयसेन की सहायता से आप ठिकाने लगवा दें।

महामंत्री—वह सब हो जायगा। परन्तु आज महाराज में यह एकाएक परिवर्तन कैसे होगया है?

विक्रम—रात मुझे स्वयं महाकाल ने दर्शन देकर शत्रु को कुचलने का आदेश दिया है। और साथ ही यह तलवार भी दी है। (तलवार दिखाता है।)

महामंत्री - (तलवार देख कर) अद्भुत तलवार है! ऐसी तलवार मैंने आज तक नहीं देखी। महाकाल की कृपा से सब कल्याण ही होगा। तो फिर आचार्य कात्यायन पर भी दृष्टि रखनी होगी।

विक्रम—आप उन्हें तुरन्त बन्दी बनालें।

(प्रतीहारी प्रवेश करता है)

प्रतीहारी—सम्राट् की जय हो। इन्दौर से दूत आया है।

विक्रम—इन्दौर से ? अभी ले आओ।

(प्रतीहारी जाता है।)

देखता हूँ, यह दूत क्या संदेश लाया है।

महामंत्री—मेरा खयाल है कि शक सेनाओं के बारे में ही कुछ होगा।

(दूत प्रवेश करता है।)

दूत—(अभिवादन करके) सम्राट् की जय हो। नायक विजयवर्मा ने सम्राट् के पास संदेश भिजवाया है कि शक सेनाएं अवन्ति से बीस कोस दूर इन्दौर तक आ पहुंची हैं और यदि समय पर सेना न पहुँची तो नगर आक्रमणकारियों के हाथ चला जायगा।

विक्रम—बस इतना ही या और कुछ। (दूत चुप रहता है।) अच्छा जाओ। (दूत जाता है।) अमात्यवर, यह जो बाढ़ों के समान शक-सेना आ रही है, इसकी भभक यहां तक पहुँचने से पहले ही इन द्रोहियों का लेखा साफ हो जाना आवश्यक है। आप खूब कठोर हाथों से काम करें। काम जल्दी हो और इसकी सूचना तुरन्त मेरे पास पहुँचती रहे।

महामंत्री-जो आज्ञा ! परन्तु सेनापति नरवर्मा ?

विक्रम-उससे आप निश्चिन्त रहें। वह अब आता ही होगा। अब आप फिर सांयकाल आइयेगा।

(महामंत्री जाते हैं।)

विक्रम—काम प्रारम्भ तो कर दिया है। अब देखना है कि ऊंट किस करवट बैठता है। और बिना यह सब किये कोई राह भी तो नहीं है। महाकाल की कृपा से सब मंगल ही होगा।

प्रतीहारी—(प्रवेश करके) सम्राट् की जय हो। सेनापति नरवर्मा दर्शन के लिये उपस्थित हैं।

विक्रम—उन्हें आने दो। नायक बलगुप्त विश्राम-भवन में होगा, उसे भेज दो।

प्रतीहारी—जो आज्ञा (जाता है।) (सेनापति नरवर्मा प्रवेश करते हैं और अभिवादन करके बैठ जाते हैं।)

विक्रम—कहो सेनापति, अवन्ति की सीमा में शक-सेना कहां तक आ पहुँची है ?

नरवर्मा—अवन्ति की सीमा में शकसेना ?

विक्रम—हां, शकसेना अवन्ति से केवल बीस कोस दूर है, यह समाचार मुझे अभी मिला है।

नरवर्मा—यह समाचार अभी तक मेरे पास नहीं पहुंचा; परन्तु उस ओर तो हमारी पर्याप्त सेना उनके मुकाबले के लिये पड़ी हुई है।

(बलगुप्त दस सैनिकों के साथ प्रवेश करके एक ओर खड़ा हो जाता है।)

विक्रम—हमारी जो पर्याप्त सेना उस ओर पड़ी थी, उसमें से अनेक द्रोही शत्रु के साथ जा मिले हैं और अब वे ही शकों को राह दिखलाते हुए यहां ला रहे हैं। इसमें तुम्हारा

कितना हाथ है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। बलगुप्त, सेनापति नरवर्मा को बन्दी बना लो।

नरवर्मा—(तलवार पर हाथ रखते हुए) बन्दी ? मुझे बन्दी कौन बना सकता है ? उलटा अब तो मैं ही तुम्हें बन्दी बनाऊंगा। मैं इसी क्षण की तो प्रतीक्षा कर रहा था।

विक्रम—(स्वयं तलवार खींच कर उठ खड़ा होता है और एक-दम पास जाकर) तुम्हें बन्दी मैं बनाऊंगा। तुम जिस क्षण की प्रतीक्षा में थे, वह अभी नहीं आया है। या तो तलवार छोड़ दो या युद्ध करो।

(बलगुप्त और उसके सैनिक भी तलवारें खींच लेते हैं। नरवर्मा घबराकर तलवार छोड़ देता है और बलगुप्त उसे बन्दी बना लेता है।)

विक्रम—बलगुप्त, इसे ले जाकर सावधानी से बन्दी रखो- अगर भागने की या छूटने की कोशिश करे तो तुरन्त समाप्त कर दो। कल इसका न्याय विचार होगा। जाओ।

दृश्य—छठा

स्थान—राजकीय उद्यान

समय—सायंकाल

[सम्राट विक्रमादित्य और महाकवि कालिदास उद्यान में हरी घास पर बैठे हैं। कुछ भावावेशपूर्ण वार्तालाप चल रहा है।]

विक्रम—कालिदास, राजतंत्र को संगठित करने का काम तो महामंत्री संभाल लेंगे पर इस दूसरे काम को तुम संभालो।

कालिदास—मैं तैयार हूं महाराज !

सम्राट—इस महान् राष्ट्र संकट के समय मैं अनुभव कर रहा हूँ कि सुसंगठित सशस्त्र प्रजा की शक्ति ही राष्ट्र की वास्तविक शक्ति है। और प्रजा को उत्साह और वीरता से भर देने का काम जैसा तुम कर सकते हो, वैसा और कोई नहीं कर सकता। तुम लोग जनता के हृदय को आलोड़ित करके उसे इतना विक्षुब्ध

कर सकते हो कि उसमें से चिनगारियां निकलने लगें। कवि की वीर वाणी सुनकर मनुष्य का स्वाभाविक भय न जाने कहां विलीन हो जाता है और प्राण एक अद्भुत उन्माद से भर कर आत्म-विसर्जन के लिए मचल उठते हैं। इसीलिए कालिदास आज से तुम्हारा स्थान विक्रम की राजसभा में नहीं, भारतवर्ष के विशाल जन-समूह में है।

कालिदास—मेरा विश्वास है कि मैं इस कार्य को कर सकूंगा। बर्बर शकों के नृशंस अत्याचारों को कथा सुन सुन कर मेरा हृदय रो रो उठता है। अपराधी को दंड न दे सकने की बेबसी से मेरी आंखों में आंसू भर आते हैं। प्रतिशोध की आग मेरी छाती में भीषण दावानल की तरह भभकती रहती है। अब तक आप उदासीन थे, इसीलिए मैं न चाहते हुए भी चुप था, परन्तु महाराज, कल से सारे भारतवर्ष की प्रजा मेरे साथ रोयेगी और मेरे साथ अत्याचारी को दण्ड देने के लिए उन्मत्त हो उठेगी। मां सरस्वती की कृपा से मैं देश के कोने कोने में ऐसा महा दावानल प्रज्वलित कर दूंगा, जिसमें सारे विदेशी आक्रान्ता और इस देश के विश्वासघाती द्रोही सब के सब एक साथ भस्म हो जांय। परन्तु महाराज जनशक्ति के उस महादैत्य को नियन्त्रित करना आपके भी बस से बाहर की बात न हो जाय ?

विक्रम—इसकी चिंता न करो कालिदास! महाकाल के आदेश से मैंने एक महान कार्यभार अपने सिर पर लिया है, जिसे पूरा करते करते तुम्हारा महादैत्य भी थक कर चूर हो जायगा। परन्तु उस पवित्र उद्देश्य के पूर्ण होने से पहले मैं उसे रुकने नहीं दूंगा।

कालिदास—वह क्या महाराज ?

विक्रम—मुझे इस पवित्र भारतवर्ष की स्वाभाविक सीमाओं को चिरकाल के लिए सुरक्षित बना देना है, जिससे एक बार युद्ध कर लेने के बाद सारी प्रजा सदा के लिए सुखी, शांत और समृद्ध जीवन बिता सके। इसके लिए मैं दिग्विजय करूंगा। सबसे पहले इसी देश के द्रोही, संभावित विश्वासघातकों को जड़ मूल से समाप्त कर दूंगा। और फिर इन आक्रांताओं से लेखा साफ करूंगा। मैंने निश्चय किया है कालिदास, कि इन बर्बर आततायियों में से एक को भी भारत-भूमि से जीवित वापस नहीं लौटने दूंगा। जिसने भी भारतीय प्रजा के खून से हाथ रंगे हैं, जिसने भी भारतीय ललनाओं के सतीत्व से खेल किया है, उसे अपने खून से इन अपराधों का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। दया के लिए विख्यात विक्रम ने तब तक के लिए दया और क्षमा त्याग दी है, जब तक यह दिग्विजय सम्पूर्ण न होजाय।

कालिदास—महाराज यही तो मेरा स्वप्न है। जिन नराधमों ने निरपराध और निरीह जनता पर नीचतापूर्ण अत्याचार किये हैं, उनमें से एक भी अदण्डित न रहे। भयभीत और त्रस्त प्रजा का मन फिर उल्लास, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान से भर उठे। नित्य नित्य की आशंकाएं और संकट एक बार सदा के लिये उखड़ जांय और फिर, हिन्दूकुश से हिन्द चीन तक और हिमालय से हिन्द महासागर तक अवन्ति का केसरिया गरुड़ध्वज स्वच्छन्द से फहराने लगे। महान चाणक्य के नेतृत्व में चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी इन्हीं सीमाओं तक दिग्विजय की थी।

सम्राट्—ऐसा ही होगा भाई, ऐसा ही होगा। अब मैं

अपने अन्दर एक अद्भुत शक्ति का संचार होता अनुभव कर रहा हूं। अब तक के लक्ष्यहीन जीवन के आगे एक सुन्दर और पवित्र उद्देश्य-मन्दिर के सुनहले शिखर मुझे दिखाई पड़ रहे हैं, इसलिए कल तक जो चरण आलस्य से शिथिल थे, आज उनमें विद्युत की सी गति आगई है, और जो हृदय कल तक अपने ही बोझ से अपने आप दबा जा रहा था, वह मानो सूर्य की किरणों पर सवार होकर आकाश में उड़ा जा रहा है।

कालिदास—इसका साक्षी मैं हूँ महाराज! कल के महाराज और आज के महाराज में जैसे कोई समानता ही नहीं है। ढेरों राख के नीचे दबे हुए अंगारों पर से जैसे किसी ने सारी राख एका-एक उड़ा दी हो, ऐसा भाव मन में उठता है।

सम्राट्—ठीक है महाकवि! तो हम दोनों एक ही युद्ध के दो मोर्चों पर एक साथ लड़ाई लड़ेंगे। मैं तलवार लेकर युद्ध-भूमि में शत्रु का मान मर्दन करूंगा और तुम अपनी ओजमयी वाणी से जनता के मन में साहस और बल का संचार करना आततायियों के विरुद्ध जनता के मन में इतनी तीव्र घृणा जगा दो कि कोई शत्रु को दो बूंद पानी तक न दे। अपने प्राण जाने का भय होने पर भी कोई उन्हें अन्न न दे और देश का बच्चा बच्चा पहला मौका मिलते ही उन्हें कच्चा चबा जाने को तैयार हो जाय।

कालिदास—महाराज यही होगा, बल्कि इससे भी ज्यादा! अपने देश-वासियों को मैं भली भांति जानता हूँ। जब तक ये सहते जाते हैं, तब तक मानों इनकी सहन-शक्ति की कोई सीमा ही नहीं होती। परन्तु न जाने कैसे और कब सहसा वह सीमा

आ जाती है; प्रतिशोध का शंख बज उठता है और तब शत्रु का जैसा समूल विनाश हमारे भारतवासी करते हैं उसकी तुलना और कहीं नहीं है। मुझे चाणक्य की बात याद आती है। पांव में कुशा गड़ जाने से उसने सारे जङ्गल की कुशाओं को उखाड़ कर उनकी जड़ में मठा डालना प्रारम्भ कर दिया था। भारतीय प्रतिशोध का सच्चा प्रतीक यही है। विधाता ने जिसे नष्ट करना होता है, उसे वे हमारे विरुद्ध ला खड़ा करते हैं।

विक्रम—ठीक कहते हो कवि, यही आज मैं अनुभव कर रहा हूँ। (पश्चिम की ओर देखकर) ओह 'सन्ध्या बीत चली। अच्छा, अब शायद जल्दी भेंट नहीं होगी, परन्तु यह मत भूलना कि तुम्हारा मोर्चा अधिक महत्वपूर्ण है। मेरी सेनाएं चाहे कहीं लड़ रही हों, तुम्हारे मोर्चे की विजय उनकी सफलता में सदा सहायक होगी।

कालिदास—यह बात मुझे सदा स्मरण रहेगी।

[दोनों उठ खड़े होते हैं और टहलते हुए उद्यान से चल पड़ते हैं]

दृश्य—सातवां

स्थान—राजप्रसाद का मन्त्रणा भवन

समय—रात का प्रथम पहर

[सम्राट विक्रमादित्य और महामन्त्री बैठे विचार कर रहे हैं।]

विक्रम—तो मतलब यह है कि नगर पर तो आपने पूरा नियंत्रण कर लिया ?

महामंत्री—ठीक पूरा तो नहीं कहा जा सकता, पर हां अब स्थिति बहुत कुछ काबू में है। पर आश्चर्य की बात यह है कि जो जैन और बौद्ध राज्यके सच्चे हितचिन्तक बनते थे, उनके यहां से बड़े-बड़े गुप्त शस्त्र-भंडार पकड़े गये हैं। और इन गुप्त शस्त्र भंडारों का पता दिया एक सन्यासी ने।

विक्रम—अच्छा ! यह सन्यासी कौन है ?

महामंत्री—यह तो मालूम नहीं, पर नगराध्यक्ष ने उसे अशान्ति फैलाने के अभियोग में बन्दी बना कर विचारार्थ मेरे पास भेजा था। पूछने पर उसने कहा कि अशांति फैलाने की कोशिश करके मैंने कुछ अनुचित काम नहीं किया है। न हो तो प्रमाणों से सिद्ध कर सकता हूँ। और फिर उसके कथनानुसार तलाशी लेने पर बड़े बड़े असामियों के यहां से सचमुच ही शस्त्र-भंडार मिले। सन्यासी का कहना है कि अवन्ति पर शक-आक्रमण होने की दशामें विद्रोह करने के लिए ही ये शस्त्रा-शस्त्र संचित किये गये थे।

विक्रम—फिर ?

महामंत्री—इन लोगों पर दृष्टि तो मेरी भी बहुत दिनों से थी, पर कोई प्रमाण हाथ नहीं लगता था।

विक्रम—उन लोगों का क्या किया ?

महामंत्री—चौराहों पर जगह जगह फांसियां खड़ी करवा दी हैं और जिनका अपराध प्रमाणित हो गया है उन्हें अपराध-घोषणा सहित फांसी दे दी गई है। इसका एक बड़ा अनुकूल प्रभाव हुआ है।

विक्रम—क्या ?

महामंत्री—आज ही प्रातःकाल राजधानी में कई जगह ऐसे सूचना-पत्र चिपके पाये गये थे, जिनमें शकों की ओर से घोषणा की गई थी कि तीन दिन बाद होने वाला अपना गो-मेध उत्सव वे अवन्ति में ही मनाएंगे। इससे प्रजा में बड़ा आतंक फैल गया था; परन्तु इन फांसियों के बाद से प्रजा में

फिर विश्वास और उत्साह भर गया है। प्रजा तो पहले से ही इन द्रोहियों से जली बैठी है ?

विक्रम—और ?

महामंत्री—और समाचार कुछ अच्छा नहीं; शक सेना नरन्तर अवन्ति की ओर बढ़ी आ रही है। हमारी सैनिक टुकड़ियां पीछे हट रही हैं। कल सांझ तक वे शिप्रा नदी तक आ पहुँचेगी।

विक्रम—ठीक है, आने दो। शिप्रा और अवन्ति के बीच में तीन कोस का सरकण्डों और झरबेरियों का जो जंगल है, वहां तक उन्हें आ जाने दो।

महामंत्री—शिप्रा के इस पार आने देना क्या ठीक होगा ?

विक्रम—मेरी इच्छा तो थी उन्हें अवन्ति की सड़कों तक आने दिया जाय और एक बार उनके रक्त से ही अवन्ति के राजमार्ग धो डाले जांय। परन्तु महानायक विग्रहवर्मा की इसमें सहमति नहीं है। खैर, तो शिप्रा पर नौकाओं का ही पुल है न ?

महामंत्री—जी हां।

विक्रम—ठीक है। पर आप इन द्रोहियों के दमन का कार्य पूर्णरूप से यथाशीघ्र पूरा कर लें क्योंकि एक बार युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर तो आपके सिर पर और बहुत से उत्तरदायित्व आ पड़ेंगे।

महामंत्री—यह तो है ही। पर इस काम के पूरा होने में अब देर नहीं है।

विक्रम—तो फिर ठीक है। सब समाचार मेरे पास भिजवाते रहिये। और उस सन्यासी को भी जरा मेरे पास भिजवाइयेगा।

महामंत्री—जो आज्ञा।

(महामंत्री उठ खड़े होते हैं और बाहर चले जाते हैं। प्रतीहारी प्रवेश करता है।)

प्रतीहारी—सम्राट् की जय हो। महानायक विग्रहवर्मा दर्शन के लिए पधारे हैं।

विक्रम—ले आओ।

(प्रतीहारी जाता है और महानायक विग्रहवर्मा प्रवेश करते हैं और अभिवादन करके बैठ जाते हैं।)

विक्रम—कहो महानायक, युद्ध की क्या प्रगति है?

विग्रहवर्मा—आपके आदेशानुसार सारी सेनाएं पीछे हटा कर अवन्ति में संगठित कर ली गई हैं। केवल थोड़ी सी टुकड़ियां शत्रु की प्रगति में बाधा डालती हुई धीमे धीमे पीछे हट रही हैं।

विक्रम—सैनिक अधिकारियों में जो नरवर्मा के साथ थे, उन सबकी सफाई पूरी हो गई?

विग्रहवर्मा—जी हां, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं थी। उनमें से कुछ तो सेनापति के बन्दी बनने का समाचार मिलते ही भाग लिए थे, बाकी पच्चीस के लगभग बन्दी बना लिए गए हैं।

विक्रम—भाग कितने गये हैं?

विग्रह—ज्यादा नहीं, केवल चार या पांच।

विक्रम—महामन्त्री के पास सूचना भिजवा देना, वे सब को ढूंढ निकालेंगे। और अपनी कितनी सेना इस समय तैयार है?

विग्रह—लगभग पचहत्तर हजार।

विक्रम—फिर कैसे काम चलेगा? शकों की संख्या तो ढाई लाख के लगभग है।

विग्रह—जो स्थिति है, वह मैंने महाराज के सम्मुख निवेदन कर दी है। वैसे मैंने सुना है कि इन ढाई लाख शकों में सब लड़ाके सैनिक नहीं हैं, बल्कि अधिकांश लुटेरे तथा चोर डाकू हैं।

विक्रम—खैर, कल शाम तक शक सेना शिप्रा नदी तक आ पहुंचेगी और जहां तक मेरा खयाल है, वे लोग रात को ही नदी पार करने की कोशिश करेंगे। अभी शिप्रा पर नावों का पुल है। शक सेना के पहुंचने से पहले ही हमारे सैनिक नावों को खोलकर बहाव की ओर नीचे बहा ले जांय। और पांच कोस दूरी पर उन्हीं नावों से नया पुल तैयार कर लें। दस हजार घुड़सवार पुल बनने से पहले ही वहां नदी पार करने के लिए तैयार रहें। हो सकेगा?

विग्रहवर्मा—जी हां, इस समय हमारे पास तीस हजार घुड़सवार हैं। दस हजार बड़ी सरलता से उस ओर भेजे जा सकते हैं।

विक्रम—तो ठीक है! पांच सौ पैदल सिपाही पांच कोस ऊपर की ओर से कल सांझ को नाव से शिप्रा के पार भेज दिये जांय।

विग्रह—यह सब भी ठीक है।

विक्रम—कल दिन ही दिन में अपनी बची हुई सारी सेना शिप्रा और अवन्ति के बीच के जंगल में इस प्रकार फैला दो कि शिप्रा को पार करने वाला एक भी शक जीवित वापिस न लौटने न पावे। तुम्हारी इस पार की सेना का मुकाबिला शकों की आधी से भी कम सेना से होगा। यदि आवश्यकता पड़े तो जंगल को जला डालने को भी तैयार रहना।

विग्रह—तब तो फिर अपनी एक तिहाई सेना शिप्रा के तट के साथ साथ रखी जाय, और बाकी दो तिहाई जंगल के इस ओर जब शक सेना उस ओर से बढ़ने लगे तो नदी के किनारे वाली सेना जंगल में आग लगा दे। फिर शक तेजी से आगे की ओर बढ़ेंगे। तभी एक साथ जंगल में सब ओर से आग लगा दी जाय।

विक्रम—यह भी ठीक है। जैसा उचित समझो करना। शकों की पचास हजार से अधिक सेना इस ओर नहीं आने पायेगी, इससे तुम निश्चिन्त रहो।

विग्रहवर्मा—तब तो अवन्ति की रक्षा करना कठिन न होगा।

विक्रम—अवन्ति की रक्षा नहीं करनी है महानायक, बल्कि जो शक सेना नदी के इस पार आ जाय उसका रात रात में बिलकुल संहार कर देना है। एक भी शक यदि जीवित बच गया तो मुझे दुःख होगा।

विग्रहवर्मा—मैं समझ गया महाराज! ऐसा ही होगा।

विक्रम—और उससे अगले सूर्योदय तक जितनी भी सेना एकत्र की जा सके। उसको मुझे नदी के उस पार आव-

श्यकता होगी।

विग्रहवर्मा—आपको आवश्यकता ? क्या आप नदी पार की सेना के साथ रहेंगे।

विक्रम—(मुस्काते हुए) मैं रहूं या न रहूँ, पर आवश्यकता तो मेरी ही है। तो फिर मैं इस ओर से निश्चिन्त हो सकता हूं ?

विग्रहवर्मा—जी हाँ। पचास हजार ही नहीं यदि साठ हजार भी शक इस ओर आ गये तो उनको हम ठिकाने लगा सकेंगे, इससे अधिक नहीं।

विक्रम—नहीं पचास हजार से कम ही आ पायेंगे। वैसे तो हम जितनों को संभाल पायें उतना ही श्रेयस्कर है।

विग्रहवर्मा—यह तो ठीक है महाराज, पर इससे अधिक में नगर को संकट है।

विक्रम—खैर, तब इतने ही सही। पर और जो कुछ पूछना हो अभी पूछ लो, फिर इसके बाद में जल्दी नहीं मिल सकूंगा; और शिप्रा के इस पार होने वाले युद्ध पर मैं ध्यान भी नहीं दे सकूंगा। (कुछ रुककर) हां, मैंने जो पांच सौ पैदल ऊपर की ओर से शिप्रा के पार भेजने को कहा है उनके साथ कोई अच्छा नायक रखना। उन्हें ठीक मध्यरात्रि में उस ओर से शक सेना पर आक्रमण करना और फिर तुरन्त पीछे भागना होगा।

विग्रह—जी, मैं सब समझ गया। सब आदेश यथाविधि दे दूंगा।

विक्रम—अच्छा और कुछ ?

विग्रह—मुझे तो और कुछ नहीं कहना है।

विक्रम—अच्छा तो फिर नमस्कार !

(विग्रहवर्मा अभिवादन करके जाता है।)

(स्वागत) बस एक दिन और रात बाकी हैं; फिर एका-एक विशाल रण-यंत्र के सब के सब चक्र एक साथ तेजी से घूमने लगेंगे। अवन्ति की सेना का शान्तिपूर्ण प्रत्यावर्तन सहसा भीषण प्रत्याक्रमणमें परिवर्तित होगा। विजयिनी शकसेना वायुवेग से दौड़ते हुए जलपोत के समान अवन्ति की महाशिला से आ टकरायगी। मैंने भी जुए पर बड़ा भारी दाव रखा है; यदि कहीं भी जरा सी चूक हो गई तो सब कुछ जाता रहेगा और यदि सब ठीक रहा तो फिर अपने स्वप्नों को सत्य करते देर न लगेगी।

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—सम्राट की जय हो। नायक जयसेन एक सन्यासी को लेकर उपस्थित हुआ है।

विक्रम—आने दो।

(प्रतीहारी जाता है और नायक जयसेन सन्यासी के साथ प्रवेश करता है। नायक जयसेन अभिवादन करके एक ओर खड़ा हो जाता है। विक्रम खड़ा होकर सन्यासी को अभिवादन करता है अभिवादन के पश्चात् सन्यासी बैठ जाता है।)

विक्रम—कहो जयसेन, कोई नया समाचार है ?

जयसेन—महाराज, इस समय तो अवन्ति में प्रतिक्षण नये समाचारों की सृष्टि हो रही है। इस समय नगराध्यक्ष के

संकेत पर संभावित द्रोहियों की लूट और हत्या में प्रजा संलग्न है। महानायक ने नगर में गश्त लगाने के लिये घुड़सवार सेना भेजी थी, किन्तु महामन्त्री का आदेश है कि द्रोहियों से लड़ने वाले नागरिकों को सेना छेड़े नहीं। इसलिये नगर में गश्त लगा कर सेना वापिस लौट गई हैं।

विक्रम— (क्षण भर विचारमग्न रहता है) चलो सब ठीक है। इस राष्ट्रीय संकट के समय द्रोहियों के सूक्ष्म न्याय-विचार के लिये मेरे पास समय नहीं हैं। नगर की आन्तरिक रक्षा के लिये तुम्हारे पास पर्याप्त नगररक्षक हैं?

जयसेन— जी हां, आठ हजार रक्षक हमारे पास हैं और इस रात्रि के दमन काण्ड के बाद तो प्रत्येक नागरिक रक्षक के समान ही है।

विक्रम—तो ठीक है। परन्तु स्मरण रखना कि शक आक्रमण के समय नगर को सब परिस्थितियों में से गुजरना पड़ सकता है। तुम्हें इस कार्य के लिये मैंने अकारण नहीं चुना।

जयसेन—महाराज की मुझ पर विशेष कृपा है। मैं अपना उत्तरदायित्व भूलूंगा नहीं।

विक्रम—ठीक है! जाओ।

(जयसेन अभिवादन करके जाता है। विक्रमादित्य सन्यासी की ओर मुड़ता है)

अजय, तुम इस वेश में यहाँ कैसे?

(अजय, उठ खड़ा होता है और दोनों एक दूसरे को आलिङ्गन करते हैं।)

अजय—आवश्यकता थी इसीलिये।

विक्रम—इसमें संदेह नहीं कि मुझे इस समय सचमुच तुम्हारी ही आवश्यकता थी। पर जब कुछ देर पहले महामंत्री ने मुझसे एक सन्यासी की बात कही, तब मैं कल्पना भी न कर सका कि वह तुम होगे। तुम तो गांधार में थे, उसके बाद तुम्हारा कोई समाचार मिला नहीं।

अजय—गांधार से मैं काश्मीर चला गया था। वहीं पर यह समाचार मिला कि शकों की सेनाएं एक के बाद दूसरे राज्य को कुचलती हुई अवन्ति की ओर बढ़ रही हैं। काश्मीर से यहाँ पहुँचते पहुँचते तीन मास लग गये; परन्तु मार्ग में जो जो कुछ देखा है, उससे लगता है कि जैसे मैं तीन वर्ष में यहाँ पहुँचा हूँ।

विक्रम—शकों की क्रूरताओं का कुछ कुछ वर्णन मैंने भी सुना है।

अजय—महाराज, इन नराधमों ने जो कुछ किया है, उसे सुनकर जाना ही नहीं जा सकता। कल्पना इतनी नृशंसता तक पहुंचते घबराती है। परन्तु उसे देखकर प्राण प्रतिशोध लेने के लिये पागल हो उठते हैं। इन म्लेच्छों का हमारी सभ्यता और संस्कृति से चिर विरोध है। या तो ये ही जीवित रह सकते हैं या हम ही।

विक्रम—हम ही जीवित रहेंगे अजय! ऐसी घृणित जातियों को विश्व की संचालक शक्तियां हमारे ऊपर विजयी कभी नहीं होने देंगी।

अजय— महाराज, जो कुछ मैंने देखा है, उसके बाद विश्व की संचालक शक्तियों पर मुझे बहुत भरोसा नहीं रहा। यदि विश्व की संचालक शक्तियां न्याय कर सकने में समर्थ होतीं तो निरपराध निरीह प्राणियों पर ऐसा नृशंस अत्याचार इतने बड़े परिमाण में संभव न होता। संसार पर से भगवान का हाथ उठ गया है।

विक्रम— तुमने विपत्ति का वज्र अपनी आंखों के सामने भीषण रूप में गिरते देखा है, इसी से भगवान पर से तुम्हारा विश्वास विचलित हो उठा है। यह अस्वाभाविक नहीं, परन्तु मुझे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवान कभी हमारा साथ नहीं छोड़ सकते।

अजय— अब तो कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु यदि महाराज की मोहनिद्रा और कुछ दिन बनी रहती तो भगवान की परीक्षा हो सकती थी।

विक्रम— परन्तु मोहनिद्रा बनी कैसे रहती अजय ? जिसे बचाना होता है भगवान उसे स्वयं ही जगा देते हैं। तुम्हें भी इस समय यहां उन्होंने ही भेजा है। नागरिक और सैनिक समस्याओं को सुलझाने के लिये महामन्त्री और महानायक मेरे पास थे, परन्तु मुझे इस समय तुम सरीखे मित्र की आवश्यकता थी, जिसे साथ लेकर बड़े से बड़े संकट में प्राणों को झोंका जा सके।

अजय— ऐसा ही हो शायद !

विक्रम— कल हमारी अभियान रात्रि है। शकों के इस प्रचण्ड आक्रमण को अपनी सेना की संख्या के बल पर रोक

पाना असंभव है; इसे केवल व्यक्तिगत शूरता तथा अपने सैनिक अधिकारियों के कौशल के बल पर ही परास्त किया जा सकता है। इसमें हम सभी को अपना अपना भाग चुकाना पड़ेगा।

अजय—(विस्मय से) पर मैंने तो सुना था कि महाराज को आमोद प्रमोद और मृगया से ही अवकाश नहीं मिलता ?

विक्रम—कहां अवकाश मिलता है अजय ? देख ही रहे हो कि यदि मैं शिकार के लिए न भी जाऊं तो भी शिकार स्वयं सामने आकर खड़ा हो जाता है। फिर लोग यदि ऐसी निन्दा करते हैं तो झूठ क्या है। अच्छा बहुत देर होगई है; अब तुम विश्राम करो। अपना यह वेश बदल डालो और महल में ही तुम्हारे निवास का प्रबन्ध हुआ जाता है। (जोर से) कोई है ?

प्रतीहारी—(प्रवेश करके) सम्राट् की जय हो।

विक्रम—इन्हें साथ ले जाओ और शयन आदि का सब प्रबन्ध करवा दो।

प्रतीहारी—जो आज्ञा।

विक्रम—(अजय से) अच्छा प्रातःकाल फिर भेंट होगी।

(प्रतिहारी और अजय एक ओर जाते हैं)

(विक्रमादित्य बैठा हुआ कुछ विचार करने लगता है ।)

दृश्य—आठवाँ

स्थान—अवन्ति का राजमार्ग

समय—प्रातःकाल

[चार चार की पंक्तियों में बालकों का एक दल केसरिया गरुड़ध्वज लिए चल रहा है। बालक एक गीत गा रहे हैं।]

गीत

जय हो भारतवर्ष की !
जिन्हें प्रेम है शांति से,
वे डरते हैं क्रांति से,
मरे जा रहे भ्रान्ति से।
वे चढ़ सकते हैं नहीं सीढ़ी नव उत्कर्ष की।
जय हो भारतवर्ष की !

निर्बल यम का ग्रास है,
विजय उसी के पास है,
जो दुश्मन का त्रास है,
वीरों को सम्मान दें, जय हो उस संघर्ष की।
जय हो भारतवर्ष की!
हम दुनियां की शान हैं,
सबसे श्रेष्ठ, महान हैं,
हमको यह अभिमान है!
सिर दे सकते हैं हमीं, रक्षा हित आदर्श की।
जय हो भारतवर्ष की!
उठो वीर हथियार लो,
रिपु-जय का अधिकार लो,
उनके सीस उतार लो,
हमला जिनने है किया; वेला नहीं विमर्श की।
जय हो भारतवर्ष की!

[बालकों का दल बढ़ते बढ़ते एक मैदान में पहुँचता है। जहां उसी तरह के कई और दल तथा विशाल जन समुदाय एकत्रित है। बीच में एक मंच बना हुआ है, जिस पर बालकों का एक छोटा सा दल ऊपर लिखे गीत को गाता है। जनता गीत की समाप्ति पर उत्साह से तालियां पीटती है। और मंच पर महाकवि कालिदास उपस्थित होते हैं। क्षण भर जनता विस्मय से स्तब्ध रहती है और अगले ही क्षण कवि के स्वागत में खूब जोर से तालियां बज उठती हैं और कुछ देर तक बजती रहती हैं।]

कालिदास—(तालियों का जोर कम होने पर) अवन्ति के नागरिको, मेरे साथियो, कल तक मैं समझता था कि मेरा स्थान

राजसभा में है, पर अब मुझे अनुभव हो गया है मेरा ठीक स्थान राजसभा में नहीं, बल्कि तुम लोगों के बीच में है। इसी से राजसभा को त्यागकर मैं तुम्हारे बीच में आ खड़ा हुआ हूँ और आज से सदा सुख और दुःख में, संपत्ति और विपत्ति में तुम मुझे अपने साथ पाओगे। आज से मेरी कविता पहले राजा के कानों में नहीं, बल्कि तुम्हारे कानों में पहुंचेगी। क्या तुम उसे सुनना चाहोगे?

बहुत से श्रोता—अवश्य, अवश्य, क्यों नहीं? हम आपकी कविता क्यों नहीं सुनेंगे? जरूर सुनेंगे।

एक श्रोता-(दूसरे श्रोता से) इन कवि जी ने आखिर राजसभा को छोड़ क्यों दिया?

दूसरा श्रोता—राजा से कुछ झगड़ा हो गया होगा। कवियों का भी कोई ठिकाना है? तुनक उठे जरा सी बात पर; बस चादर उठाई, फिर तु कहाँ और मैं कहाँ?

एक श्रोता—नहीं भई, मुझे तो कुछ और ही रहस्य मालूम होता है। सुनो सुनो; वह कुछ बोल रहे हैं।

कालिदास—साथियो, तुम सबको मालूम ही है कि अत्याचारी शकों की सेना अवन्ति के कितना पास आ पहुंची है, उसी के सम्बध में तुम्हें एक कविता सुनाता हूँ।

उठो देश के समरबांकुरो, रिपु ने आ ललकारा है!
आज घोर संकट के नीचे भारतवर्ष हमारा है।
पश्चिम से बढ़ रही शकों की सेनाएं अत्याचारी,
निर्विचार हो हत्या करतीं बाल, वृद्ध, अबला, नारी;

शस्त्रहीन ग्रामीणों के वे गांव जलाती आती है,
उनकी निष्ठुरता को लख निष्ठुरता स्वयं लजाती है;
आज राष्ट्र का राजतन्त्र है हो इतना कमजोर गया,
रक्षा कर न सकेगा अब वह; आज हुआ है भोर नया;
उठे प्रजा की शक्ति शस्त्र ले रिपु का मान मिटाने को,
उसके शोणित से उसके बर्बर अरमान मिटाने को;
पता शकों को चले कि किसको आ उनने ललकारा है,
आज घोर संकट के नीचे भारतवर्ष हमारा है!
हैं वे बर्बर नीच युवतियों को हर हर कर ले जाते,
और घृणिततम औ नृशंसतम जुल्म आह उनपर ढाते;
मैंने अपने कानों से उनके विलाप चीत्कार सुने,
तलवारों के बल पर बर्बरता के जय जयकार सुने;
मुर्दा मां की छाती चिपके मृतशिशु देखे मैंने;
और कटे कुचयुग जिनके वे रमणीशव देखे मैंने,
आर्य रक्त है तुममें इसको हरगिज माफ नहीं करना;
बर्बरता का दण्ड सौ गुना पड़े बर्बरों को भरना,
मिले सान्त्वना उनको जिनने रक्षा हेतु पुकारा है;
उठो देश के समरबांकुरो रिपु ने आ ललकारा है।
जागो निद्रा त्याग, सुनो है राष्ट्रदेव हुंकार उठा,
गली गली से निकल पड़े हैं मतवाले हथियार उठा:
बस थोड़ी ही देर बाद अब चल देगी लड़ने सेना,
तुम मत जाना चूक, तुम्हें भी है अपना हिस्सा देना;
अरे समर के अभिमानी,आता प्रति दिन संग्राम नहीं,
अब चूके तो फिर वर्षों के लिये युद्ध का नाम नहीं;

हम निश्चय के साथ बढ़ेंगे रिपु को नहीं हटाने को ;
पर उसका सर्वस्व फूंकने औ' अस्तित्व मिटाने को ,
बचे न हिन्दूकुश तक दुश्मन यही हमारा नारा है !
उठो देश के समर बांकुरों, रिपु ने आ ललकारा है !

(कविता की समाप्ति पर फिर तालियाँ बजती है ।)

(पर्दा बदलता है एक ओर सभा में कालिदास कविता सुना रहे हैं ।)

हम लोगों की भलमनसी का तुमने समझा मोल नहीं !
हम चुप थे, तुम समझे, हम हैं हो तुमसे भयभीत रहे,
हमने हमला किया नहीं, तुमने समझा तुम जीत रहे ,
किन्तु हमारी निष्क्रियता के वे दिन हैं अब बीत रहे ;
और आज से कभी तुम्हारा होगा पहला वार नहीं ;
कर पाओगे पहले जैसा अब तुम नरसंहार नहीं ,
जो कुछ तुम उससे ही तुमको जीने का अधिकार नहीं ;
एक बार जब जाग गये हम, जब हम तुमको समझ गये ,
हमले की तो बात दूर तुम मुंह तक सकते खोल नहीं !
हम लोगों की भलमनसी का तुमने समझा मोल नहीं !

[तालियां बजती हैं और परदा गिरता है]

दृश्य—नवां

स्थान—शकों द्वारा विजित एक गांव

समय—पूर्वाह्न

[सशस्त्र शकों की एक टोली एक घर में घुसी हुई है। एक युवक तथा एक वृद्ध को तीन चार शकों ने पकड़ा हुआ है। बाकी घर की छानबीन कर रहे हैं।]

एक शक—देखा, घर में कैसा चूहे जैसा दुबका बैठा था!

दूसरा शक—नहीं, बेचारा लड़ने के लिये सुई पैना रहा था।

तीसरा शक—नहीं जी, मारने के लिए दीवार में से ईंट उखाड़ रहा था; वह तो उखड़ी नहीं, नहीं तो हम सबको खतम कर देता।

चौथा शक—देखो तो, मुंह कैसा बना रहा है! जैसे खा ही जायगा हमें। क्यों बे बुढ़ऊ, यह तेरा कौन लगता है?

दूसरा शक—बेटा है या दामाद?

तीसराशक—साला है या बहनोई?

पहला शक—बोलता क्यों नहीं? अहा हा, बेचारे की जीभ अकड़ गई है, चीमटे से खींच कर ठीक करनी पड़ेगी।

चौथा शक—गले में कंकड़ अटक गया है, काट कर निकालना पड़ेगा।

दूसरा शक—(गला टटोल कर देखता है।) है, है। सच कहता हूँ, गले में कंकड़ है।

(पर्दे के एक ओर से मानो दूसरे कमरे में से आवाज आती है।)

अरे चुहिया रे चुहिया!

तीसरा शक—क्या है बल्लक?

बल्लक—(पर्दे के पीछे से) अरे, यार यहां आकर देख; क्या तितली सी बैठी है। अरे अप्सरा है अप्सरा!

(कई शक उस ओर लपकते हैं। युवक तड़प कर एका-एक छूट जाता है और पास पड़ा हुआ एक डंडा उठा लेता है और शकों पर टूट पड़ता है।)

युवक—लो नराधमो, अपने कुकर्मों का प्रायश्चित्त करो।

(शक क्षण भर को चौंकते हैं और फिर तलवारों से आक्रमण करते हैं। पर्दे के पीछे से नारी-कण्ठ का आर्तनाद सुन पड़ता है। युवक उस ओर दौड़ता है। शक पीछा करते हैं)

(पर्दे के पीछे से)

वह मारा ! गिर गया, गिर गया ! मारो मत, अपनी आंखों के आगे ही यह इस चुहिया का सम्मान देखे ।

(घायल युवक की कराहने की आवाज और नारीकण्ठ का चीत्कार सुन पड़ता है ।)

युवक—अरे पापिष्ठो, जब महाराज विक्रमादित्य को ये समाचार मालूम होंगे, तब तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ? जितना ही नृशंसता द्वारा तुम अपने अपराधों को बढ़ाते जाओगे, उतनी ही दण्ड की कठोरता भी बढ़ती जायगी। अवश्य ही वे तुम्हारे मांस की बोटियां नुंचवा कर चील कौवों के लिये फिंकवा देंगे ।)

(कराहते हुए शान्त हो जाता है)

एक आवाज—शाप देते देते मरा है !

दूसरी आवाज—अरे शाप से चोट थोड़े ही लगती है !

दृश्य—दसवां

स्थान—शक-शिविर

समय—मध्याह्न

[शक सेनापति अपने सेनाध्यक्षों के साथ विचार विनिमय कर रहे हैं।]

सेनापति—क्यों चष्टप, आज हमारी सेनाएं शिप्रा तक पहुँच जायेंगी ?

चष्टप—जी हां, सूर्यास्त से पूर्व ही मैंने उन्हें वहां पहुंचने का आदेश दिया है। और किसी विशेष बाधा की सम्भावना भी नहीं है।

सेनापति—पर हम पिछड़ गये हैं। परसों ही तो गोमेध है; हमें कल अवन्ति में होना ही चाहिये।

चष्टप— कल तो हम प्रत्येक दशा में अवन्ति में होंगे ही। अधिक से अधिक शिप्रा पर पुल की बाधा हो सकती थी, सो हम नौकाएं अपने साथ ला ही रहे हैं।

सेनापति— तो तुम्हारा विश्वास है कि अवन्ति की सेना हमारा बिल्कुल ही मुकाबला नहीं करेगी ?

चष्टप— अवन्ति के पास सेना है ही कहां ? होती तो क्या अब तक कुछ न करती ?

सेनापति— सेना है तो अवश्य ! मुझे सूचना मिली है कि अवन्तिराज के पास तीस हजार सेना है।

एक सेनाध्यक्ष— पर उसे तो नरवर्मा ने बुरी तरह सब ओर बखेर रखा है। कुछ सेना हमारी ओर भी आ मिली है।

सेनापति— हां, वैसे तो अवन्ति के बहुत से बौद्ध तथा जैनों ने हमें सहायता का आश्वासन दिया है। वे धन से तथा शस्त्रों से हमारी सहायता करने को उद्यत हैं। और यह भी सुना है कि अवन्ति का राजा लड़ाई भिड़ाई की अपेक्षा आमोद प्रमोद तथा शिकार खेलना अधिक पसन्द करता है। अच्छा, तो सेना को रोको नहीं। तुरन्त पुल बंधवा कर सवेरे से पहिले ही सारी सेना नदी के पार भेज दो। अब हमारी सेना अवन्ति में ही जाकर विश्राम करेगी।

दूसरा सेनाध्यक्ष— पर पुल पार करने में काफी देर लगेगी।

सेनापति— यह तो है ही, फिर भी जितनी शीघ्रता हो सके, उतनी करो। और चष्टप, इन विजित लोगों के साथ जितनी दया के साथ तुम व्यवहार कर रहे हो, उतने से काम नहीं चलेगा।

इन्हें पूर्ण रूप से कुचल दो, नहीं तो अगर कहीं हमें कभी वापस भागना पड़ा--जिसकी कोई संभावना नहीं-तो यही लोग हमारे लिये महान संकट बन कर खड़े हो जायंगे। मैंने सुना है कि तुमने बहुत सी पकड़ी हुई स्त्रियों को दया करके छुड़वा दिया?

चष्टप— श्रीमान् वे थोड़ी सी वृद्धा और गर्भवती स्त्रियां थीं।

सेनापति--पर यह तो कोई बात न हुई। चष्टप, तुम समझते नहीं हो, इनमें से एक को भी मत छोड़ो। जिसे तुम आज चिनगारी मात्र समझ कर छोड़ देते हो, वही कल दावानल बनकर तुम्हें ही जला सकती है। जिसे मारा जा सकता है, उसे मार दो। स्त्री बच्चे का विचार व्यर्थ है। अवन्ति में विशेष रूप से ध्यान रखना होगा कि न तो कोई मकान खड़ा रहे और न कोई प्राणी जीवित बचे। बन्दी बनाना बेकार है। अनुभव से हमने जान लिया है कि इन लोगों से बलपूर्वक कोई काम लिया नहीं जा सकता। हां स्त्रियों में जो जरा······हां उन्हें न मारा जाय। सब सैनिकों को ऐसे ही आदेश दे दिये जांय।

चष्टप— जो श्रीमान् की आज्ञा।

सेनापति— और गोमेध की खूब उत्साह से तैयारी करो मैंने सुना है कि अवन्ति बड़ी समृद्ध नगरी है। लूट का माल खूब मिलेगा। सैनिकों को तीन दिन तक मनमानी करने दी जाय।

चष्टप— जो श्रीमान् की आज्ञा।

(सेनाध्यक्षों की आंखें चमकने लगती हैं।)

दृश्य — ग्यारहवां

स्थान—महाश्मशान

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

[सम्राट् विक्रमादित्य, अजयगुप्त तथा बलगुप्त एक ओर से प्रवेश करते हैं। सबके सब शस्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित हैं]

अजय— महाराज, इस अमावस्या की रात्रि में जब कि शत्रु अवन्ति पर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं, आप इस महाश्मशान में भटकने क्यों निकल पड़े हैं ?

विक्रम—अजय, सभी तो यह जानते हैं कि आमोद-प्रमोद से मुझे अवकाश नहीं है। युद्ध के समय कोई मेरी आशा भी नहीं करेगा। और अवन्ति की सेनाओं की बागडोर तो महानायक विग्रहवर्मा के हाथ में है। उस पर मुझे पूर्ण विश्वास है, फिर मैं क्यों न थोड़ा सैर से मन ही बहला लूं।

अजय—महाराज, हंसी कर रहे हैं, नहीं तो अंधकार में सैर के लिए तो इस श्मशान से अच्छे बहुत से स्थान मिल सकते थे।

विक्रम—नहीं अजय, अंधेरी रात में फूलों से भरे बाग में सैर करना तो व्यर्थ है, कारण कि कुछ दीखेगा नहीं। परन्तु यहां पर जो कुछ देखने को है, वह स्वयं प्रकाशित है। देखो न, इस जड़ स्तब्धता में जलती हुई चिताएं कितनी सुन्दर जान पड़ती हैं!

अजय—सौन्दर्य का मानों अन्त ही नहीं है। परन्तु महाराज, जलते मांस और चर्बीकी सुगन्धि का भी कोई अन्त नहीं दीखता। पर हम जा कहां रहे हैं?

विक्रम—चले चलो; ऐसी सैर भी रोज रोज कहां होती है।

(चलते चलते तीनों वृक्षों के एक घने झुरमुट के पास पहुँचते हैं। विक्रमादित्य थोड़ा आगे बढ़कर पुकारता है।)

वैताल, ओ वैताल!

(नेपथ्य से चीखती हुई और डरावनी आवाज आती है।)

कौन पुकार रहा है?

विक्रम—मैं हूँ विक्रम। यहाँ आओ।

('अच्छा' कह कर वैताल सामने आ खड़ा होता है। उस की वेशभूषा विचित्र तथा आतंक पैदा करने वाली है।)

वैताल—कहो विक्रम, क्या बात है? ये कौन हैं?

विक्रम—मेरे ही साथी हैं। तुम्हें इस समय मेरे साथ चलना पड़ेगा।

वैताल—क्यों चलना पड़ेगा और कहां चलना पड़ेगा, यह बताओ तो चलूंगा, नहीं तो नहीं।

विक्रम—क्यों डर लगता है क्या ?

वैताल—पर तुम ही बता क्यों नहीं देते ?

विक्रम—अच्छा सुनो। शकों की सेना ने शिप्रा पर नावों का पुल बांध लिया है और नदी पार कर रही है। मैं चाहता हूँ कि आधी शक सेना पार उतर जाने के बाद पुल को तोड़ दिया जाय। उपाय सोच ही रहा था कि ध्यान आया कि वैताल को अग्निसिद्धि प्राप्त है। बोलो, नावों के पुल को भस्म कर सकते हो या नहीं ?

वैताल—(क्षण भर सोचता है) नावों का पुल पानी पर बना हुआ है ? (थोड़ा रुककर) हां हां, सब ठीक हो जायगा। रस्से फूस, लकड़ी, जो कुछ जल सकता होगा जल जायगा, बाकी बह जायगा। तुम्हें पुल टूटने से मतलब है, सो हो जायगा।

विक्रम—शाबास वैताल! और चाहिए क्या ? अच्छा तो फिर बस चल पड़ो। देर करने का अवसर नहीं है।

वैताल—जरा ठहरो, मैं अपनी पुटलिया तो ले आऊं।

(वैताल जाता है और जरा देर बाद लौट आता है। सब शिप्रा नदी की ओर चल पड़ते हैं)

वैताल—शकसेना शिप्रा को पार कर रही है और तुम्हें अब आ कर होश हुआ है विक्रम ?

विक्रम—पर तुम्हें तो अब भी नहीं हुआ।

वैताल—वाह, राजसिंहासन पर बैठोगे तुम और शत्रु के आक्रमण की चिंता करूंगा मैं ?

विक्रम—क्यों अवन्ति क्या तुम्हारी नहीं है ?

वैताल—हम सरीखे निःस्व और अरण्यसाधक लोगों के लिए तो अवन्ति जैसी है, वैसी ही नहीं। न तुम लोगों ने हमें कुछ दे देना है और न शकों ने कुछ ले लेना।

विक्रम—तुम्हारे सिवाय यह बात और कोई नहीं कह सकता।

वैताल—क्यों ?

विक्रम—क्योंकि तुम एकान्त में श्मशान के पास पड़े रहते हो। दुनियां का उलटा सीधा हालचाल कुछ तुम्हें पता रहता नहीं ! अगर तुम्हें शकों के बारे में कुछ भी मालूम होता तो तुम मुंह से हरगिज ऐसी बात न निकाल सकते।

वैताल—भाई, आखिर हैं तो वे भी मनुष्य ही !

विक्रम—यहीं तो तुम भूलते हो। सिर्फ मनुष्य के जैसा शरीर होने से ही क्या सब कोई मनुष्य समझे जा सकते हैं ? जिनमें शिक्षा और संस्कार नहीं, दया माया नहीं, न्याय या नैतिकता की कोई बुद्धि जिनके अन्दर हैं ही नहीं, जो सिर्फ दांत और नाखूनों को ही चरम शक्ति समझे बैठे हैं और मनुष्य-देह का चमड़े और मांस से अधिक जो कुछ मूल्य ही नहीं लगाते, उन्हें मनुष्य कह कर तुम मनुष्यत्व का अपमान कर रहे हो वैताल ! एक बार पश्चिमोत्तर भारतवर्ष में भ्रमण करो और वहां नरमांस के ऊपर नर-शोणित से लिखी हुई इनकी बर्बरता की कथा पढ़ो, तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुमने इन पशुओं को 'मनुष्य' कह कर कितनी भूल की है।

वैताल—हो सकता है विक्रम, कि तुम्हारी ही बात सच हो। असल में मुझे तो अपनी साधना से फुरसत ही नहीं मिलती, इसलिए दुनियां में कहां क्या हो रहा है और कौन कैसा

है, यह मुझे कुछ भी पता नहीं रहता। इस विषय में मुझे तुम पर विश्वास है। जो कुछ सहायता मुझसे बन पड़ेगी, वह मैं सदा करने को तैयार रहूँगा।

विक्रम—यह मैं तुम्हारे बिना कहे भी जानता हूं वैताल! लो, हम शिप्रा के तट पर आ पहुँचे। यहां से तीन कोस नीचे की ओर शकों ने पुल बनाया है। यहां हमें ले चलने को डोंगी तैयार है। पर चलो, चलने से पहले महाकाल के दर्शन ही करते चलें।

वैताल—तुम तो जानते ही हो, मुझे मन्दिरों में और देवताओं में रत्ती भर आस्था नहीं है। पर यदि तुमने दर्शन करने हैं, तो तुम कर आओ, मैं यहीं बैठा हूँ।

(विक्रमादित्य, अजय और बलगुप्त जाते हैं और थोड़ी देर बाद लौट आते हैं।)

वैताल—(व्यंग से) कर आये दर्शन? महाकाल ने आशीर्वाद दिया कि नहीं?

विक्रम—आशीर्वाद क्यों नहीं देंगे! उन्हीं के आदेश को पूर्ण करने के लिए तो हम निकले हैं। महाकाल के दर्शन से नया बल और नई स्फूर्ति प्राप्त होती है अजय! अच्छा, अब हमें चल पड़ना चाहिये।

(सब नदी के किनारे पहुंच कर डोंगी पर सवार हो जाते हैं।)

★

दृश्य—१२वां

स्थान—शिप्रा-तट

समय—मध्यरात्रि

[पर्दा खुलता नहीं है। नेपथ्य में हो रहे युद्ध का महान कोलाहल सुन पड़ता है। सब आवाजें पर्दे के पीछे से आती हैं।]

एक आवाज—श्रीमान्, पुल में आग लग गई है। बांधने वाले रस्सों के जल जाने के कारण जलती हुई नावें प्रवाह में बह गई हैं। सैकड़ों सैनिक पानी में गिरकर बह गए हैं।

सेनापति—यह कौन आ रहा है? चष्टप?

चष्टप—जी श्रीमान्, मैं ही हूं।

सेनापति—यह पुल में आग कैसे लगी?

चष्टप—श्रीमान्, अभी तो कुछ भी मालूम नहीं; पर आग लगने के साथ ही नदी में एक डोंगी देखी गई बताते हैं। उसमें कई आदमी सवार थे। हो सकता है, यह उन्हीं की करतूत हो। पीछा करने के लिए सैनिक भेज दिये हैं।

सेनापति—ओफ, कैसी काली अंधेरी रात है! हाथ को हाथ नहीं सूझता। पुल का जल जाना अद्भुत बात है! नदी पार की सेनाओं को क्या आदेश है?

चष्टप—आदेश तो यही था कि वे अवन्ति पहुँच कर ही विश्राम करें। वह उधर देखिये, आग कैसी लग रही है ? लगता है हमारी सेना ने अवन्ति को आग लगा दी है।

सेनापति—पर अवन्ति तो बहुत दूर है। यह आग तो एक दम पास मालूम होती है। यह कैसा भीषण कोलाहल सुनाई पड़ रहा है ? युद्ध हो रहा मालूम होता है।

(पर्दा हटता है। चष्टप और सेनापति नदी के किनारे खड़े दीख पड़ते हैं।)

चष्टप—जंगल जल रहा प्रतीत होता है। वह देखिये एकाएक सब ओर से नई नई आग की लपटें आकाश की ओर उठ रही है।

(नदी के दूसरे किनारे से 'महाकाल की जय हो' 'भारतवर्ष की जय हो' 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो' के जयघोष सुनाई पड़ते हैं।)

श्रीमान्, अवन्ति की सेना ने बड़ी भारी चाल चली है। हमारी सेना को घेरती हुई वह शिप्रा के किनारे आ पहुंची है। शकसेना का लौटने का रास्ता भी उसने बन्द कर दिया है। सारा जंगल धू धू करके जल रहा है। श्रीमान्, हमारी सेना गई।

सेनापति—गई ? क्या मतलब ?

चष्टप—बस श्रीमान्, उस सेना को तो नष्ट ही समझिये। नया पुल बनने से पहले हम कुछ सहायता भेज नहीं सकते और तब तक उसका क्या हाल होगा ?

सेनापति—ओफ, फिर तो लगता है गोमेध महोत्सव अवन्ति में नहीं मनाया जा सकेगा।

(एक सेनाध्यक्ष प्रवेश करता है)

सेनाध्यक्ष—(अभिवादन करके) श्रीमान्, उत्तर की ओर से शत्रु ने आक्रमण कर दिया है।

सेनापति—आक्रमण ? उनकी कितनी संख्या होगी ?

सेनाध्यक्ष—अन्धकार में ठीक तो जांची नहीं जा सकी, पर फिर भी कम नहीं मालूम होती।

चष्टप–जब इन्होंने आक्रमण किया है तो ऊपर कोई पुल अवश्य होगा। उस ओर से हम उस पार सहायता भेज सकते हैं।

सेनापति–यह भी ठीक है। पर यह भी संभव है कि उन्होंने नौकाओं से नदी पार की हो। जब तक उनकी संख्या ज्ञात न हो, कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता।

सेनाध्यक्ष–संख्या तो पर्याप्त जान पड़ती है। नौकाओं से इतनी सेना का पार आना कठिन है।

सेनापति–क्यों चष्टप, क्या सोचते हो ?

चष्टप–पहले यहीं नौकाओं का एक पुल था, यह तो हमें मालूम हो चुका है। मेरा खयाल है कि इन्हीं नौकाओं को ऊपर ले जा कर इन्होंने नया पुल तैयार कर लिया होगा। हमें ऊपर की ओर चल पड़ना चाहिये।

(एक सैनिक प्रवेश करता है।)

सैनिक–(अभिवादन करके) श्रीमान्, शत्रु घबरा कर पीछे हट रहा है।

सेनापति–ठीक है। आक्रमणकारी को कुचल ही देना चाहिये। सेनाओं को ऊपर की ओर ले चलो; तेजी से बढ़कर पुल पर कब्जा कर लिया जाय।

(सैनिक और सेनाध्यक्ष जाते हैं।)

चष्टप, ये लक्षण कुछ अच्छे मालूम नहीं होते। अवन्ति-राज ने कौशल में हमें परास्त कर दिया है।

चष्टप—मुझे तो आश्चर्य पुल जलने की घटना पर हो रहा है। हमारी सेना पुल पर से गुजर रही थी और एकाएक पुल भभक कर जलने लगा।

(एक और सेनाध्यक्ष तेजी से प्रवेश करता है)

सेनाध्यक्ष–(अभिवादन करके) श्रीमान्, दक्षिण की ओर से शत्रु की शक्तिशाली घुड़सवार सेना आक्रमण कर रही है। उत्तर की ओर बढ़ा जाय या दक्षिण की ओर ?

सेनापति— दक्षिण की ओर से घुड़सवार सेना ? हमारे ऊपर और नीचे दोनों ओर पुल हैं; शत्रु सेना इस पार आ रही है और हमारे पास उस पार जाने को पुल नहीं है ? चष्टप, हमारी अधीरता ने हमें डुबोया है। सेना दिन भर की थकी हुई है। उसके लिये लड़ना सरल नहीं है। अवन्ति में गोमेध मनाने के मेरे सारे स्वप्न सामने उस महादावानल में जल रहे हैं। सेनाध्यक्ष, इस समय उसपार की हमारी सेना तो घिर ही चुकी है, हमारे भी इस नदी तीर पर घिर जाने का भय है। इसलिये उत्तर या दक्षिण की ओर नहीं, बल्कि पीछे पश्चिम की हटो। कैसी अन्धेरी काली रात है !

चष्टप—(नदी पार की ओर देखकर) कैसी भयानक आग है ! पीछे हटना ही श्रेयस्कर है श्रीमान् !

सेनाध्यक्ष— जो आज्ञा

[बाहर जाता है। नेपथ्य में युद्ध का कोलाहल अधिक और अधिक होता जाता है। आवेश में सेनापति और चष्टप दोनों युद्ध-क्षेत्र की ओर निकल जाते हैं]

दृश्य—१३ वां

स्थान— शिप्रा-तट
समय— प्रातःकाल

[घोड़ों पर सवार सम्राट् विक्रमादित्य, अजय, तथा बलगुप्त प्रवेश करते हैं। विक्रम के हाथ पर, अजय के कन्धे पर तथा बलगुप्त के सिर पर पट्टियां बंधी हुई हैं। रात्रि के युद्ध में तीनों ही घायल हुए हैं]

विक्रम—(पूर्व की ओर देख कर) इतनी भयंकर काली रात के बाद कैसा सुन्दर सुनहला प्रभात उदित हुआ है! महा-काल की दया से हमें विजय प्राप्त हुई है। प्रकाश कितना सुखद जान पड़ता है!

अजय—महाराज, रात की श्मशान यात्रा, उसके बाद डोंगी में बैठकर पुल को आग लगाना और घुड़सवार सेना के साथ शकों पर आक्रमण करना, ये सब मुझे स्वप्न की बातें मालूम हो रही हैं। ऐसा लगता है कि मानों यह सब वास्तव में हुआ ही नहीं है। परन्तु रणक्षेत्र में जो संख्यातीत शव पड़े हैं, वे जैसे मूकभाव से कह रहे हैं कि 'नहीं, यह स्वप्न नहीं, सुखद सत्य है।' शक इतने कायर होंगे, इसकी तो मुझे कल्पना भी नहीं थी।

विक्रम— अजय, अत्याचारी में हृदय नहीं होता। जिसमें हृदय होता है उसमें करुणा भी होती है और साहस भी। और इसलिये जब अत्याचारी को प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है, तो वह टिक नहीं पाता। नहीं तो उनकी तुलना में हमारे सैनिक मुट्ठी भर भी नहीं थे।

अजय— तो आपका क्या ख्याल है कि शक परास्त हो चुके हैं? अब वे आक्रमण नहीं करेंगे क्या?

विक्रम— यही मैं सोच रहा हूं। बलगुप्त, एक बार तुम्हें जाना होगा। महानायक से कहना कि उस ओर का युद्ध समाप्त होने पर जितनी भी सेना संभव हो उसे लेकर स्वयं इस पार आयें।

बलगुप्त— जो आज्ञा महाराज! (जाता है।)

विक्रम— आज परम सुख का दिन है अजय! यह नहीं कि शक समाप्त हो गये हैं, उनकी संख्या शायद अब भी हम से बहुत अधिक है। परन्तु जिस प्रकार निर्बाध रूप से अन्याय करते करते अन्यायी का हौसला बढ़ता जाता है, उसी प्रकार एक बार मुंहतोड़ उत्तर मिलने पर उसकी हिम्मत टूट जाती है। अब इन बर्बरों का तेज हरा जा चुका है। इनके मन से अपनी अजेयता का गर्व लुप्त हो गया है। अब इनकी पराजय अवश्यं-भावी है। इसलिये मुझे आज बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

अजय— प्रसन्नता का तो यह क्षण ही है महाराज! कल तक जो संकट की घनी काली घटा छाई हुई थी, वह इस प्रकार बिना बरसे फट गई, इससे किसे हर्ष न होगा?

विक्रम— मैं कहता था न कि भगवान हमारे साथ हैं। यदि ऐसी हिंस्र विनाशक शक्तियों की संसार में विजय हुआ करती होती, तो अब तक प्रलय कभी की हो चुकी होती।

अजय-- सहायता के लिये भगवान का धन्यवाद है! परन्तु जिस अलौकिक साहस और पराक्रम से आपने रात आक्रमण किया था, उसके अभाव में भगवान की कृपा कुछ विशेष लाभकर न होती।

विक्रम-- (मुस्कराते हुए) मनुष्य का शरीर तो सीमित ही बल और बुद्धि का है। इससे जो अलौकिक काम बन पड़ता है, वह सब महाकाल की ही कृपा है। उसका श्रेय मुझे नहीं है। पर, अब तुम कुछ देर विश्राम कर लो, फिर कौन जाने विश्राम का अवसर मिलता है या नहीं।

(दोनों एक ओर निकल जाते हैं)

दृश्य—१४वाँ

[कालिदास की प्रचार-यात्रा जोर शोर से जारी है । सारे देश में स्थान स्थान पर जा जाकर वह सभाओं में भाषण दे रहा है। विशाल जनसमूह के बोच में कालिदास एक मंच के ऊपर दीख पड़ता है ।]

कालिदास—यह सत्य है कि हम शान्तिप्रिय जाति के लोग हैं; अकारण युद्ध करने की प्रवृत्ति हममें नहीं । परन्तु जब आक्रमणकारी हमारी उस अभीष्ट शान्ति पर ही आक्रमण करता है, तब शान्ति की रक्षा शान्ति द्वारा नहीं की जा सकती । तब शान्ति की रक्षा करती है तलवार ! इसीलिये शान्तिप्रिय लोगों को अपनी तलवार सदा म्यान से बाहर रखनी पड़ती है।

साथियो, बर्बर शकों और हूणों ने हमारे धैर्य की बड़ी कठोर परीक्षा ली। यह नहीं कि हम उनके पैशाचिक अत्याचारों से अनजान थे, यह भी नहीं कि हम उनका प्रतिकार करने में असमर्थ थे, बल्कि अगर सम्राट् की सेना चाहती तो अवन्ति के सुदूर सीमान्त पर ही शकों को कुचल सकती थी और अधिक सरलता से कुचल सकती थी। परन्तु साथियो, देश में देशद्रोहियों का कुचक्र अपनी नीचता की सीमाओं को लांघ

रहा था। ये लोग एक ओर तो यह प्रचार कर रहे थे कि हमें पश्चिमोत्तर दिशा से कोई खतरा नहीं है और दूसरी ओर शत्रुओं को सहायता देने की पूरी तैयारी कर रहे थे। वस्तुतः अपने देशवासियों के खून की सारी जिम्मेदारी इसी देश के देशद्रोहियों पर है। हम इन्हें कभी क्षमा नहीं कर सकते।

भीड़ में से एक आवाज—

गद्दारों को साफ करो
इनको कभी न माफ करो

(जनता उत्साह और उल्लास से तालियां पीटती है।)

कालिदास—साथियो, अभी तक भी बहुत से देशद्रोही इसी देश में हैं। शकों और हूणों को पराजित होते देखकर अब उन्होंने भी रंग बदल लिया है। वे सम्राट् के परम भक्त होने का दम भरने लगे हैं। परन्तु एक बार हम सबने उन्हें पहिचान लिया है; अब न क्षमा के लिये स्थान है न दया के लिये। वे गिड़गिड़ायेंगे, दीन बन कर प्राणों की भिक्षा मांगेंगे, परन्तु उस समय तुम यह हरगिज मत भूलना कि उनके सिर पर असंख्य निरपराधों का खून है और अपने ही साथियों पर हुए निर्मम अत्याचारों का उत्तरदायित्व है।

जनता—हम बदला लेंगे, देशद्रोहियों से बदला लेंगे। जो कुछ वे हमारे साथ करना चाहते थे, वही हम उनके साथ करेंगे।

(पर्दा बदलता है। एक दूसरी सभा में कालिदास भाषण दे रहा है।)

कालिदास—साथियो, शिप्रा के युद्ध में महाकाल की

कृपा से हमारी विजय हुई है। लूट और खून के प्यासे शकों को शस्त्रबल से पीछे धकेल दिया गया है। उनमें से हजारों को अपने अपराधों के बदले अपने खून से शिप्रा के तट धोने पड़े हैं। उनकी सेना की संख्या बहुत अधिक थी, और इस देश के बहुत से नीच विश्वासघातक भी उनके साथ थे, परन्तु फिर भी विजय हमारी ही हुई है।

जनता—भारतवर्ष की जय हो; सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो!

कालिदास—परन्तु शिप्रा तट पर हुई विजय ही अन्तिम और वास्तविक विजय नहीं है। अभी शकों के पास काफी बड़ी सेना है; यद्यपि उसका साहस टूट चुका है, पर फिर भी यदि उसका विनाश न किया गया, तो वह दुबारा आक्रमण अवश्य करेगी। इसलिये संकट टल गया है, ऐसा सोच कर निश्चिन्त मत हो जाना। जिसके घर में सांप रहता है, वह सुख की नींद कैसे ले सकता है? सम्राट् की सेना शकों का पीछा कर रही है, परन्तु हमारी सेना अपर्याप्त है।

जनता—हम सेना में सम्मिलित होंगे। हम शकों का पीछा करेंगे।

(पर्दा बदलता है, एक और सभा में कालिदास भाषण दे रहा है।)

कालिदास—साथियो, जीवन बहुत प्रिय मालूम होता है और मानव जीवन है भी बड़ा बहुमूल्य! संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं, उन सबका उपभोग करने वाला मनुष्य है, और इस दृष्टि से मानव जीवन का जो भी मूल्य आंका जाय, वह थोड़ा।

है। परन्तु युद्ध काल में- जब शत्रु द्वार पर खड़ा होकर ललकारता हो, जब अपने सम्मान पर चोट आती हो, या किसी लोक सम्मत आदर्श की रक्षा का प्रश्न हो, उस समय के लिये हमारे विद्वान् मनीषी इस जीवन का एक और मूल्य बता गए हैं, और वह है एक कानी कौड़ी। जिस प्रकार अखण्ड सम्पूर्ण रत्न का मूल्य लाखों मुद्राओं के बराबर होता है, परन्तु खण्डित हो जाने पर उसी का कुछ भी मूल्य नहीं रहता, उसी प्रकार इस बहुमूल्य मानव जीवन का सम्मान और प्रतिष्ठा से शून्य होने पर एक कानी कौड़ी से अधिक मूल्य नहीं है।

मनुष्य का विकास राष्ट्रीय स्वरूप में हुआ है। आज राष्ट्र का मान अपमान, मनुष्य के व्यक्तिगत मान अपमान से बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो उठा है। यदि हमें संसार में सुख तथा सम्मान का जीवन बिताना है तो इसके लिये आवश्यक है कि हमारा राष्ट्र संसार का सम्मानित तथा प्रतिष्ठित राष्ट्र हो।

शकों के आक्रमण ने हमारा सब सम्मान और सारी प्रतिष्ठा हर ली थी। संसार के समाने हमारा दुर्बल और असमर्थ स्वरूप प्रकट हुआ था; परन्तु शिप्रा के युद्ध में महाकाल की कृपा और सम्राट् के बल कौशल ने भारतवर्ष की लाज रख ली है। शकों के अवन्ति-विजय के सब स्वप्न शिप्रा के ठण्डे पानी में बह गये हैं।

परन्तु अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ है। जय पराजय का अन्तिम निर्णय अभी नहीं हुआ। अभी तो रणचण्डी और अधिक खून मांगती है; अभी सम्राट् और सैनिक मांगता है।

जब सम्राट् की सेना में प्राण-विसर्जन के मतवाले लाख

लाख सैनिक सम्मिलित होकर आगे बढ़ेंगे, तभी तो बर्बर शकों के झुण्ड प्राण लेकर उस ओर भागेंगे, जहां से वे आये थे। लाशों के ऊपर पांव रख रख कर, खून का समुद्र पार करते हुए हमें आगे बढ़ना होगा; तभी एक दिन वह शुभ गोधूलि वेला आयेगी, जब सुदूर पश्चिमोत्तर में दर्रा खैबर के पार हिन्दूकुश पर्वत पर अवन्ति का केसरिया गरुड़ध्वज फहरा उठेगा। उसी दिन भारत की पवित्र भूमि पर दुराचार विदेशियों के आक्रमण सदा के लिए समाप्त होंगे। देशवासी उसी रात चैन की नींद सो सकेंगे। उसके बाद ही हमारा जीवन जीने योग्य हो सकेगा।

इसलिए सब उठो! बच्चे, बूढ़े, नर, नारी सब उठो! विजय में सबने अपना भाग चुकाना है। स्कन्द के समान पराक्रमी सम्राट् विक्रमादित्य तुम्हारा सेनापति है। कोई हजार वर्ष में ही ऐसा राष्ट्रनेता अवतार लेता है। उसके नेतृत्व में आओ, हम सब आगे बढ़ेंगे; जहां जहां भी शत्रु युद्ध करेगा, वहीं वहीं उसे कुचलेंगे और हिन्दूकुश से हिन्द चीन तक तथा हिमालय से हिन्द महासागर तक भारत के सीमान्त को जब तक सुरक्षित न कर लेंगे, तब तक न थकेंगे, न रुकेंगे, न क्षणभर विश्राम करेंगे।

जनता—(पागल सी होकर) हां, हां चलो, हम सब चलेंगे। हम भारत के सीमान्त को सुरक्षित करेंगे। शत्रुओं को कुचलेंगे। सम्राट विक्रमादित्य की जय हो! भारतवर्ष की जय हो।

(पर्दा गिरता है। नेपथ्य में।)

जय हो भारतवर्ष की।
हम दुनियां की शान हैं

सबसे श्रेष्ठ महान हैं;
हमको यह अभिमान है
रक्षा कर सकते हमीं, सिर देकर आदर्श की।

निर्बल यम का ग्रास है!
विजय उसी के पास है
जो दुश्मन का त्रास है;
वीरों को सम्मान दे, जय हो उस संघर्ष की।

जिन्हें प्रेम है शान्ति से,
वे डरते हैं क्रान्ति से,
मरे जा रहे भ्रान्ति से,
वे चढ सकते हैं नहीं सीढी नव उत्कर्ष की।

जय हो भारतवर्ष की!

(संगीत धीमा होते होते रुक जाता है।)

★

दृश्य—१५वाँ

स्थान—पंजाब के मैदान

समय—प्रातःकाल

[सम्राट् विक्रमादित्य की घुड़सवार सशस्त्र सेनाएं पंक्ति-बद्ध खड़ी हुई हैं। सम्राट् महानायक विग्रहवर्मा के साथ घोड़ों पर चढ़े हुए प्रवेश करते हैं। सेना 'भारतवर्ष की जय हो' 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो' के तुमुल जयघोष से उनका अभिवादन करती हैं।]

विक्रमादित्य—(अभिवादन स्वीकार करके) की सशस्त्र सेना के वीर सैनिको, आज तुम्हारे विजय-प्रयाण का एक नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। अवन्ति की सीमाओं से तुमने कायर शत्रु को खदेड़ कर बाहर कर दिया है। आज उनकी अजेय सेना तुम्हारे कठोर आघात से छिन्नभिन्न होकर प्राण बचाने के लिए भाग खड़ी हुई है। अब फिर अवन्ति की ओर आंखें उठा कर देखने का साहस वे नहीं करेंगे।

परन्तु अभी तुम्हारे विश्राम का क्षण नहीं आया है। समस्त भारतवर्ष की प्रजा मुक्ति की अदम्य लालसा से भर कर आज हमारी ओर आंखें लगाए हुए है। उनकी पुकार की क्या हम उपेक्षा कर सकते हैं?

सुदूर पश्चिमोत्तर में हिन्दूकुश की उपत्यका तक हमारे भाई निवास करते हैं। उन सबको अवर्णनीय कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं, और उन कष्टों को न सह पाने के कारण असंख्य लोगों को इस ओर भाग आना पड़ा है। जिन बर्बरों ने पशुबल से हमारे भाइयों का घर बार, पत्नी पुत्र सभी कुछ छीन लिया है, उन्हें अब बिना दण्ड दिये छोड़ने का मेरा विचार नहीं है।

अत्याचारियों के अत्याचार से विक्षुब्ध होकर भारतवर्ष की सारी प्रजा ही सैनिक बन गई है। राजधानी से निरन्तर नई नई सेनाएं हमारी सहायता के लिये आ रही हैं। सामने आर्त जन पुकार रहे हों, पीछे से सहायता के लिये अनेकानेक साहसी और पराक्रमी युवक चले आ रहे हों, तो कौन पापी को उसके पाप का दण्ड देने में विलम्ब करेगा?

वीरो, हमें आगे बढ़ना है, वहाँ तक, जहां हिन्दूकुश के पीछे सूर्य भगवान अस्त होते हैं। हम नदी के बाद नदी और नाले के बाद नाले को पार करते हुए आगे बढ़ेंगे। सिन्धु के महानद में अपने घोड़ों को पानी पिला कर हमें गान्धार देश तक पहुँचना है, जहाँ शत्रु को परास्त करके अंगूरों की बेलों के निकुंजों में हम विश्राम करेंगे।

महामंत्री चाणक्य के समय सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने सैल्यूकस को परास्त करके भारतवर्ष की सीमा हिन्दूकुश तक

निर्धारित की थी, परन्तु उसके बाद हमारी दुर्बलता का लाभ उठाकर विदेशी हमारी सीमाओं में घुस आये। जितने ही हम शान्तिप्रिय और दुर्बल होते गये, उतनी हमारी सीमाएं पीछे और पीछे हटती गई। यदि इतिहास में प्रियदर्शी सम्राट् अशोक न हुए होते, तो हमें हिन्दूकुश तक पहुंचने के लिये फिर शस्त्र न उठाने पड़ते। यदि हिन्दूकुश पर पाटलिपुत्र का प्रहरी खड़ा होता, तो क्या ये बर्बर शक और हूण भारतीय सीमा में प्रवेश कर सकते थे ?

दैव विपरीत हुआ, राजनीति का स्थान अहिंसा ने ले लिया; शस्त्रों का काम प्रेम से लिया जाने लगा; उसकी समाप्ति कहाँ आकर हुई है, इसे लाखों जले हुए गांव, असंख्य नरनारियों का भूमि पर बहा हुआ खून और उससे बढ़कर वे कल्पनातीत पीड़ितों के चीत्कार, जो अब महाशून्य में विलीन होचुके हैं, भली भांति समझा सकते हैं।

परन्तु आज वह समय नहीं है। आज महाकाल का कृपालु करुणामय हाथ हमारे सिर पर है। हमें गर्व है कि हमने अपने से अधिक बलशाली शत्रु को पछाड़ दिया है। आज भारतीय सिंह जाग उठा है !

फिर, सोते हुए सिंह की गुफा में आकर जिन अपदार्थों ने अधिकार जमा लिया है, उसके जागने पर अब वे उसे किस प्रकार बनाये रख सकते हैं ? हिन्दूकुश की सीमा तक हमारा अधिकार है और उसे हम लेंगे ? बिना वहाँ तक पहुंचे, हमारी सीमा पूर्ण ही नहीं होती।

हाथों में गरुड़ध्वज को लेकर बढ़ो और ले जाकर इसे

हिन्दूकुश पर गाड़ दो !

उसके बाद ही हम सबके विश्राम का, रुकने का क्षण आयेगा।

(सम्राट् के चुप होते ही प्रयाण का शंख बज उठता है और सेना अभिवादन करती हुई सम्राट् के सामने से गुजरने लगती है। सम्राट् अभिवादन स्वीकार करते हैं। सेना के गुजर जाने पर)

विक्रम—(विग्रहवर्मा से) मुझे इन सैनिकों पर गर्व है !

विग्रहवर्मा—महाराज, ये सारे संसार के गर्व की वस्तु हैं।

(जाते हैं)

★

दृश्य— १६ वां

स्थान— एक जंगल में नाले का तट

समय— दोपहर

[तीन शक सैनिक बैठे हुए बात चीत कर रहे हैं। देखने से ही मालूम होता हैं कि वे परास्त सेना के भागने से थके हुए सिपाही हैं।]

एक शक— दोस्त, तू खूब मिला। उस दिन जब तू पीछे रह गया, तो मैंने तो समझ लिया था कि मारा गया। तू बच कैसे आया ?

दूसरा शक— बस भाई कुछ पूछ मत; ऐसी मुसीबत भी जिन्दगी में देखनी लिखी थी और उसके बाद भी जीना लिखा था, इसीलिये बच आया; नहीं तो उनके हाथ से कोई बचकर आया है ?

तीसरा शक— यार सुनते तो थे कि ये लोग दया के मारे सांप को भी नहीं मारते; पर ओह, ओह, ऐसे भंयकर आदमी ही मैंने कहीं नहीं देखे। घोड़े पर चढ़े ऐसे चले आते हैं, मानों यमदूत हों। कितना भी हाथ पैर जोड़ो, पर दया माया इन्हें छू

ही नहीं गई। इतनी निर्दयता करना हमारे बस में तो है नहीं।

पहला शक— उन दिनों, जब हम आगे बढ़ रहे थे, तो हमने एक ब्राह्मण को पकड़ लिया था और उसके सामने ही उसके बेटे का सिर धड़ से अलग कर दिया। तो वह ब्राह्मण बहुत चिलबिलाने लगा; बोला: 'अरे, पापियो, तुम निःशस्त्र बलहीन लोगों पर अत्याचार कर तो रहे हो, परन्तु जब हमारे सैनिक तुम्हारे मुकाबले के लिये आयंगे, तब तुम उनसे अपने लिये क्या आशा करते हो?' हमने उसकी खिल्ली उड़ाई और कहा: 'अरे बहुत देखे हैं तुम्हारे मुकाबला करने वाले सैनिक! सांप और बिच्छू तक को तो मारते तुम्हारा हाथ कांपता है! तुम करोगे हमारा मुकाबला!' इतना सुनते ही उस पतले से आदमी की उत्तेजना समाप्त हो गई और वह बड़े शान्त स्वर में कहने लगा 'शायद तुम इसी भ्रम में हो। पर यह याद रक्खो कि सांप बिच्छू को मारते हुए हमारे मन में दया जरूर जागती है, पर उन आततायियों को, जिन्हें हम सांप और बिच्छू से हजार गुना विषैला तथा घातक समझते हैं, मारते हुए हमारे सैनिकों को तनिक भी संकोच नहीं होता। उन्हें मार देना वे अपना धर्म समझते हैं।' उस समय तो उस ब्राह्मण की बातों का हमने खूब मजा लिया और आखिर में उस बेचारे को एक कुएं में धकेल दिया, पर आज उसकी बातों को याद करके दिल कांपता है। ये जो घुड़सवार तलवारें चमचमाते हुए हमारे पीछे अपने घोड़े दौड़ाते आते हैं, हमें मार देना ही ये अपना धर्म समझते हैं। इनका कोई बड़ा बूढ़ा ऐसा ही लिख गया है। ये हमें सांप बिच्छू से भी खराब समझते हैं। और इसीलिये शायद इतने बेरहम बन जाते हैं।

तीसरा शक— मैंने देखा है, वे पकड़ते नहीं, बात नहीं करते, बस ललकारते हैं और हमला शुरू कर देते हैं; जैसे हमारा पूरा फैसला करके ही घर से निकले हैं। मैं तो भागते भागते थक गया, पर वे पीछा करते नहीं थके।

दूसरा शक— मैंने भी दो दिन से मुंह में अन्न का दाना तक नहीं डाला। इस ओर से भागता हूँ तो उस ओर से घुड़सवार आते दीखते हैं; दूसरी ओर भागता हूं तो उस ओर से कुछ और घुड़सवार आ टपकते हैं। यही बिल्ली चूहे का खेल चल रहा है; पर लगता है, यह भी अब देर तक नहीं चल पायेगा, क्योंकि बिल्लियां बहुत सी हो गई हैं। आखिर बिना अन्न जल के कब तक भागते रह सकेंगे ?

पहला शक—आखिर ये हमारा पीछा कहां तक करेंगे ?

तीसरा शक—क्या कहा जा सकता है ? सेनापति का खयाल तो यह था कि ये अरावली से आगे नहीं बढ़ेंगे, परन्तु अब तो पंजाब की पांचों नदियों को पार करके ये सुलेमान की जड़ तक आ पहुँचे हैं। लगता है दर्रा खैबर के पार भी हमारी मुक्ति नहीं है। जो अनुमान कर सकते थे, वे सेनापति ही अब न जाने कहां हैं ?

दूसरा शक—पता नहीं जीते भी हैं या नहीं !

पहला शक—(दूसरे शक से) दोस्त, तूने जो औरतों के बहुत से गहने बटोरे थे, उनका क्या हुआ ?

दूसरा शक—होता क्या ? उन गहनों की अपेक्षा अपने प्राण अधिक मूल्यवान जान पड़े; इसलिए इन्हें लेकर भाग रहा हूँ। उनका मोह करता तो इनकी ममता त्यागनी पड़ती।

पहला शक—तब तो व्यर्थ ही इतनी सुन्दरियों की हत्या की। इससे तो अच्छा था कि उन सुन्दरियों का ही आनन्द लेते। अहा, क्या एक से बढ़कर एक अप्सराएं थीं!

(नेपथ्य में दूर से आता हुआ जयघोष का शब्द सुन पड़ता है, 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो' 'भारतवर्ष की जय हो'।)

तीसरा शक—लो तुमने सुन्दरियों की चर्चा की और वे 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय' बोलते आ पहुँचे। अच्छा, तुमने कभी विक्रमादित्य को देखा है?

पहला शक—नहीं भाई, उसके बारे में सुना तो बहुत कुछ है, पर देखा कभी नहीं।

दूसरा शक—मैंने एक बार देखा है। चौड़ा मस्तक, सुन्दर आकृति, पतला और गठा हुआ शरीर, देखकर इच्छा होती है कि बस देखते ही रहें; पर हमें अधिक देर तक देखने की सुविधा नहीं है। ये लोग एक शब्द बोलते हैं—'नरेन्द्र' जिसका मतलब होता है 'आदमियों का मालिक'। बस वह ठीक वही है; देखते ही आदमियों का मालिक मालूम होता है। मन होता है कि हमारा भी मालिक वही हो जाय। पर उसे देखकर डर भी लगता है। यही एक अजीब बात है।

तीसरा शक—तुझे तो उससे प्यार हो गया मालूम होता है। ऐसे सुना रहा है जैसे कोई स्त्री अपने प्रेमी का बखान कर रही हो।

दूसरा शक—जैसा देखा है, जैसा लगता है वैसा सुना दिया, अब तुम जो चाहो, कहो। पर मैं कहता हूँ कि अगर तुम

उसे देख लोगे तो तुम भी यही कहोगे। यह सोचकर दुःख होता है कि जो आदमी हमें इतना अच्छा लगता है, उसे हम इतने बुरे लगते हैं कि उसने ये ढेर के ढेर घुड़सवार हमारे पीछे लगा दिये हैं।

(नेपथ्य में पास ही फिर विक्रम का जयघोष सुनाई देता है। 'उठो, उठो, भागो भागो,' कहते हुए तीनों भाग खड़े होते हैं। नेपथ्य में)

हम विश्व विजय करने वाले !

हैं गर्व हमें हमने रण में भारत का मान बढ़ाया है,
है गर्व हमें हमने उस पर निज जीवन रक्त चढ़ाया है,
है गर्व हमें हमने रिपु को झुकने का पाठ पढ़ाया है,
हम लड़े शत्रु ने हाथों से जब तक हथियार नहीं डाले।

मालूम हमें है बर्बर ने अबलों पर अत्याचार किया,
कुछ पाप पुण्य या नैतिकता का उसने नहीं विचार किया,
हम झपट पड़े; जब त्रस्तों ने पीड़ा से हाहाकार किया,
रिपु से बदला ले सहलाए हमने उनके दुखते छाले।

बलवान बाहुओं में संभली यह ध्वजा आज तक झुकी नहीं,
दुष्टों को आतंकित करती यह सैन्य किसी से रुकी नहीं,
जो जली वीरता की ज्वाला, वह जलकर है बुझ चुकी नहीं,
है खुली चुनौती दुनियाँ को, जिसमें बल हो आ अजमाले।

हम विश्व विजय करने वाले !

दृश्य—१७ वां

स्थान—काश्मीर

समय—सूर्योदय

[विशाल मैदान में सेना पंक्ति बांधकर खड़ी हुई है। महा-नायक विग्रहवर्मा भाषण दे रहे हैं।]

विग्रहवर्मा—वीर सैनिको, तुमने भारतवर्ष के लिए जो विजय प्राप्त की हैं, उनके कारण सारा देश तुम पर गर्व करता है। हिन्दूकुश की चोटियों पर गरुड़ध्वज गाड़ कर तुमने विदेशियों के भारत से लौटने तथा फिर कभी आक्रमण करने का मार्ग सदा के लिए बन्द कर दिया है। आज भारतवर्ष की असीम बलशालिनी सेना सारे देश में निरुपद्रव शान्ति स्थापित कर सकी है; इसका सबसे अधिक श्रेय तुम्हें है; तुम्हें, जो कि सब युद्धों में सबसे आगे रहे हो।

पश्चिमोत्तर सीमान्त में शत्रु को निश्चित रूप से चिर-काल के लिए परास्त कर दिया गया है। अत्याचारी अपने अप-

राधों का समुचित दण्ड पा चुके हैं। इस कश्मीर की सुन्दर भूमि में, जहां रूस, तिब्बत और चीन की सीमाएं भारत की सीमा से मिलती हैं, अपनी सुदृढ़ चौकी हमने स्थापित कर ली है।

आज हमारी शक्ति को संसार स्वीकार करता है। दूसरे देश आज हमसे मित्रता करने को उत्सुक हैं; आज कोई हम पर आक्रमण करने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

भारतीय सेना के विजयी वीरो, आज हमारे सुखद विश्राम का क्षण आ ही पहुँचा था, परन्तु संसार में कुछ लोग अपने विनाश के लिये बावले हुए फिरते हैं। ऐसे लोग चुपचाप बैठे हुए विषधर को छेड़कर, सोते हुए सिंह को जगाकर अपनी मृत्यु का आह्वान करते हैं। आज सुदूर बंग देश के लोगों ने ऐसा ही किया है। उन्होंने अपनी मूर्खता के प्रवाह में, अपने अज्ञान के आवेश में सम्राट् विक्रमादित्य की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। कल तक वे इसी भारत के अंग थे और आज उन्होंने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया है।

सम्भवतः उनका विचार हो कि अवन्ति बहुत दूर है, और सम्राट की सेनाएं पश्चिमोत्तर में गई हुई हैं, इसलिए वे सम्राट् की अवहेलना कर सकते हैं। निःसन्देह उनका विचार मिथ्या है क्योंकि इस समय अवन्ति में ही सम्राट् की असंख्य पराक्रमशालिनी सेना उपस्थित है; परन्तु सम्राट् ने कृपा करके तुमको ही यह विशेष गौरव प्रदान किया है कि पूर्वी सीमान्त की विजय भी तुम्हारे ही हाथों हो।

[सेना 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो' का जयघोष करती है।]

इसलिए इस सुन्दर प्रदेश को छोड़कर हमें अभी प्रस्थान करना है और अविनीत बंगवासियों को बतलाना है कि हमारी बाहुओं में बल रहते, हमारी तलवार में धार रहते, हमारी अवहेलना करके कोई इस प्रकार स्वतन्त्र नहीं हो सकता।

हिन्दूकुश के पीछे जहां सूर्य भगवान अस्त होते हैं, वहां तक का प्रदेश हम विजय कर चुके हैं; अब हमें पूर्व में वहां तक जाना है, जहां अराकानयोमा के पार सूर्य भगवान उदित होते हैं। और फिर हिन्दूकुश से हिन्दचीन तक जो एकछत्र साम्राज्य स्थापित होगा, संसार की कोई भी शक्ति उसकी ओर दुर्भावना से आंख नहीं उठा सकेगी। फिर कोई पश्चिम का आक्रान्ता या पूर्व का विद्रोही हमारी शांति को भंग न कर सकेगा।

सम्राट् अभी अस्वस्थ हैं। उनका घाव पूरी तरह नहीं भरा है, किन्तु इस पूर्व के युद्ध में तुम्हारा नेतृत्व उन्होंने स्वयं ही करने का निश्चय किया है।

[सेना हर्षोन्मत्त होकर जयघोष करती है। 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय' 'भारतवर्ष की जय'। प्रस्थान का शंख बज उठता है। सेना कूच करती हुई निकल जाती है।]

दृश्य—१८वाँ

स्थान—अयोध्या

समय—पूर्वाह्न

[सम्राट् विक्रमादित्य, महानायक विग्रहवर्मा तथा अन्य कुछ सैनिक अधिकारी अयोध्या का निरीक्षण करते दीख पड़ते हैं। एक प्रदर्शक स्थानों का वर्णन कर रहा है।]

प्रदर्शक—(एक खंडहर की ओर संकेत करके) महाराज, यह मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र का महल है। बौद्धकाल में इसे तोड़ दिया गया था।

सम्राट्—(देख कर विषाद से) हाय राजाराम का महल इस दशा में! जिन्होंने अपने प्रताप से सारे भरतखण्ड को राक्षसों से शून्य किया था, जिन्होंने अपने सच्चरित्र तथा प्रजा वत्सलता के कारण प्रत्येक भारतवासी के मन में ईश्वर का सा स्थान बना लिया था, उसी यशस्वी राजा के स्मृतिरूप प्रासाद की ऐसी दुर्दशा! (ध्यान से देखकर) अपने समय में यह महल कितना सुन्दर रहा होगा?

विग्रहवर्मा—प्रियदर्शी अशोक के समय में बौद्धों का

विवेक शक्ति के मद से लुप्त हो गया था। तभी की ये करतूतें हैं।

सम्राट्—पुराने स्मारकों को भंग कर देने में क्या पराक्रम है? कला का इस प्रकार विनाश कर देना बर्बरता है!

(सब आगे बढ़ते हैं।)

प्रदर्शक—(एक और भवन की ओर संकेत करके) यह सीता रानी का मन्दिर था। यहां वे शिव की उपासना किया करती थीं। इसमें चौंसठ स्तम्भ स्वर्ण के बने हुए थे। वे लूट कर श्रावस्ती ले जाये गये हैं। उनसे बौद्धों ने अपने एक विहार की शोभा बढ़ाई हैं।

सम्राट्—हाय री प्राचीन अभागी अयोध्या! एक एक दृश्य से हजार हजार स्मृतियां जाग उठती हैं। सीता, जो पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी, जिसका अपूर्व आदर्श जब तक सूर्य चन्द्र हैं, तब तक अनुकरणीय रहेगा, उसकी पवित्र स्मृतियों के साथ ऐसा क्रूर ताण्डव किया गया है! अयोध्या का ऐश्वर्य लूट कर श्रावस्ती समृद्ध बनी है!

[आगे चलते हैं]

प्रदर्शक—(एक खाली पड़ी हुई जगह की ओर संकेत करके) यहां रामचन्द्र जी के बनवास के समय भरत जी रामचन्द्र जी की पादुकाओं को सामने रख कर राजशासन करते थे। उस समय यहां महल था, परन्तु इस स्थान को विशेष रूप से नष्ट किया गया। महल को तोड़ कर गधों का हल यहां चलवाया गया और अब उसका कुछ भी चिन्ह यहां शेष नहीं है।

सम्राट्—बस करो प्रदर्शक, मैंने अयोध्या देख ली! क्षोभ

से मेरा अन्तस्तल रो रो उठा है। आर्य संस्कृति के ऐसे बड़े बड़े स्मारक जिन बर्बरों ने केवल अपने पशुबल के जोर से नष्ट कर दिये हैं, उन्हें क्या कहूँ, कुछ समझ नहीं आता। राजाराम की अयोध्या की ऐसी दुर्दशा करके बौद्धों ने अवश्य ही सन्तोष माना है। नीच को अपनी नीचता में बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु आज मैं इस पुनीत अयोध्या नगरी में सरयू के तीर पर खड़ा होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अयोध्या को लूट कर और नष्ट करके बौद्धों ने जिस श्रावस्ती को सजाया है, जब तक उसका सौभाग्य छीन कर फिर अयोध्या को पहली दशा में न ला दूंगा, तब तक एक क्षण चैन से न बैठूंगा। महानायक, हमें पहले श्रावस्ती से भुगतना होगा। बौद्धों ने अपनी मनमानी करके परम प्रसन्नता प्राप्त की है, इसलिये अब ऐसा करना है, जिससे उन्हें उतना ही दुख भी प्राप्त हो।

विग्रहवर्मा— महाराज की जो आज्ञा! तीन दिन के भीतर ही श्रावस्ती अयोध्या बन जायगी। तभी बौद्धों को अनुभव होगा कि पशुबल से प्राप्त की हुई विजय क्षणिक होती है।

सम्राट— विध्वस्त अयोध्या को देखकर मुझे लग रहा है कि ये अहिंसक लोग हिंसा के लिये बदनाम शकों से कुछ कम नहीं रहे।

विग्रहवर्मा— तथागत की आत्मा इनकी करतूतों पर फूट फूट कर रोती होगी।

[सब आगे बढ़ जाते हैं]

दृश्य—१९ वां

स्थान—अवन्ति की राजसभा

समय— पूर्वाह्न

[विक्रमादित्य का साम्राज्याभिषेक हो रहा है। राजसभा में अनेक देशों के दूत उपस्थित हैं। पुरोहित तथा महामंत्री सब प्रथाएं सम्पन्न करवा रहे हैं। विक्रमादित्य अपूर्व वेश में बहूमूल्य आभरण धारण किये सिंहासन के पास खड़े हैं।]

पुरोहित— विक्रमादित्य, तुमने शस्त्रबल से दिग्विजय की है। हिन्दूकुश से हिन्दचीन तक, तथा हिमालय से हिन्द-महासागर तक सारे प्रदेश को शत्रु से विहीन कर दिया है। कोई भी बली नरेश तुम्हारा विरोध करने को तैयार नहीं है। प्रान्त प्रान्त के क्षत्रप इस सभा में उपस्थित हैं। वे सब तथा सारी प्रजा तुम्हें अपना सम्राट् स्वीकार करती है; इसलिये मैं राष्ट्र की ब्रह्मशक्ति का प्रतिनिधि बनकर तुम्हें यह साम्राज्य-मुकुट प्रदान करता हूँ। इसे धारण करो। न्याय में तुम्हारी बुद्धि स्थिर रहे!

[मुकुट देते हैं। विक्रमादित्य मुकुट लेकर सिर पर

धारण करते हैं। प्रजा 'सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो' का जय-घोष करती है।]

पुरोहित— कहो कि 'महाकाल की कृपा से यह साम्राज्य मुझे मिला है। मैं प्रजा को सदा पुत्रवत् समझूंगा।'

[विक्रमादित्य दुहराता है]

कहो कि, सदा न्याय करूंगा; भय से या मोह से कभी इस कर्तव्य को भूलूंगा नहीं।

[विक्रमादित्य दुहराता है]

कहो कि, अपनी शक्ति का प्रयोग निर्बल की सहायता के लिये ही करूंगा। [विक्रमादित्य दुहराता है]

पुरोहित— अब तुम इस सिंहासन पर बैठ सकते हो।

[विक्रमादित्य बैठ जाता है]

[पुरोहित बैठ जाते हैं। महामंत्री खड़े होते हैं।]

महामन्त्री— महाराज, ये देश देश के मित्र राजाओं के प्रतिनिधि मित्र भाव से उपहार लेकर आये हैं, कृपा कर इन्हें स्वीकार कीजिये।

[विक्रमादित्य खड़ा होकर एक एक करके स्वयं सब उपहारों को स्वीकार करता है। और अन्त में फिर सिंहासन पर बैठ जाता है।]

महामंत्री— महाराज, अब ये आपके सेवक लोग हैं, जिन्होंने सदा भक्तिभाव से राज्य की सेवा की है। इन्हें आप यथारुचि पुरस्कार देने की कृपा करें। महानायक विग्रहवर्मा!

[महानायक उठ कर अभिवादन करते हैं और विनय भाव से खड़े रहते हैं

महामन्त्री— महाराज, इन्होंने अनेक युद्धों में आपका साथ दिया है और सभी रणक्षेत्रों में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया है।

सम्राट्— आज से भारतवर्ष की सशस्त्र सेना का सेना-पतित्व स्वयं त्याग कर मैं महानायक विग्रहवर्मा को सौंपता हूँ।

[प्रजा उत्साह व प्रसन्नता से तालियां बजाती है।
सेनापति अभिवादन करके बैठ जाते हैं।]

महामन्त्री— नायक जयसेन !

[जयसेन उठ कर अभिवादन करता है। और विनम्र भाव से खड़ा रहता है]

महामंत्री— महाराज, नगर रक्षक सेना के नायक जयसेन ने अवन्ति के युद्ध में अद्भुत योग्यता तथा पराक्रम प्रदर्शित किया था।

सम्राट—आज से नायक जयसेन को मैं अवन्ति का महा-नायक नियुक्त करता हूं।

[फिर तालियां बजती हैं। महानायक अभिवादन करके बैठ जाते हैं।]

महामंत्री—सेनाध्यक्ष !

[पच्चीस सेनाध्यक्ष अभिवादन करके खड़े रहते हैं।]

महामंत्री—महाराज, युद्ध में इन्होंने विशेष पराक्रम प्रद-र्शित किया है।

सम्राट्—उसके लिए इनमें से प्रत्येक को मैं दो दो गांव देता हूं।

महामंत्री—(धीरे से सम्राट् से) नायक बलगुप्त और

अजयगुप्त ?

सम्राट्—(धीरे से) वे कुछ स्वीकार न करेंगे।

[ऊंचे स्वर से] और अमात्यवर, राष्ट्रीय संकट के समय आपने जो महत्वपूर्ण सेवा की है, उसके लिए आप को क्या दिया जा सकता है ? परन्तु फिर भी अपने मन के सन्तोष के लिए आपको सौ गांव भेंट करता हूँ।

[महामन्त्री विनीत भाव से आभार प्रदर्शित करते हैं। प्रजा तालियां बजाती है।]

महामन्त्री—महाराज, इस शुभ अवसर पर विक्रमशिला विश्वविद्यालय के उपाध्यायों की ओर से यह संदेश प्राप्त हुआ है। (एक भोजपत्र खोल कर पढ़ते हैं।) महाराज विक्रमादित्य के साम्राज्याभिषेक के सुखद अवसर पर किस देशवासी का मन गर्व से भर न उठेगा ? सम्राट् विक्रमादित्य के बल और बुद्धि के कारण ही आज इस देश के निवासी निःशंक, स्वच्छन्द तथा ससम्मान जीवन यापन कर सकते हैं। जिस प्रकार अन्धकारमय परि-स्थिति में से निकाल कर देश को उन्होंने नये सुनहले प्रभात में ला खड़ा किया है, उसके लिए उनकी सेवाओं का सम्मान किया जाना चाहिए। हम सारे देश की प्रजा की ओर से यह प्रस्ताव करते हैं कि आज के शुभ दिन से एक नये संवत् का प्रारम्भ किया जाय, जिसका नाम विक्रम संवत् हो। इस प्रकार हमारी महान विजय के इस दिन तथा हमारे प्रिय सम्राट् विक्रमादित्य की स्मृति सदा के लिये अमर हो जायगी।

जनता—अवश्य अवश्य, बहुत सुन्दर प्रस्ताव है ! संवत्सर अवश्य प्रारम्भ किया जाना चाहिये।

सम्राट्—जब आप लोगों की इच्छा है तो भारतवर्ष की इस विजय के उपलक्ष में एक चैत्र से नया संवत् प्रारम्भ कर दिया जाय और आगे से समस्त राजकार्य में उसी का व्यवहार हो।

जनता—'सम्राट विक्रमादित्य की जय हो' 'भारतवर्ष की जय हो'।

(पर्दा गिरता है)

दृश्य—२० वाँ

स्थान—राजप्रासाद का मन्त्रणा भवन

समय—पूर्वाह्न

[सम्राट् विक्रमादित्य और महामंत्री वररुचि कुछ मंत्रणा कर रहे है।]

सम्राट्—जयसेन जैसा वीर तथा प्रबन्धकुशल व्यक्ति अवन्ति में दूसरा मिलना कठिन है। उस पर मुझे सचमुच ही बड़ा स्नेह है इसीलिये तो मैंने उसे महानायक बनाया है। और तुम कहते हो कि यह भूल हो गई दीखती है।

महामन्त्री—महाराज जयसेन से आपको तो स्नेह है ही, सारी अवन्ति को भी उससे वैसा ही स्नेह है। अपने अनेक गुणों के कारण वह अवन्ति में इतना लोकप्रिय है कि यदि वह लोगों के सामने ही उनके बेटों के सिर भी काट दे, तो भी वे उसे क्षमा कर देंगे। पर फिर भी मेरा ख्याल है कि जयसेन उस ऊंचे पद के योग्य नहीं था, जो उसे मिल गया है।

सम्राट्—पर तुम्हारा ऐसा विचार क्यों है ?

महामन्त्री—बात यह है महाराज, कि दो दिन हुए एक बूढ़े आदमी ने मेरे पास आकर रोते हुए न्याय-याचना की। पूछने पर उसने बताया कि उसकी युवती कन्या का जयसेन ने बलपूर्वक अपहरण कर लिया है।

सम्राट्— (चौंक कर तथा सावधान होकर) एँ, ऐसा ?

महामन्त्री—उसने यह भी बताया कि पहले जयसेन ने उस वृद्धे से अनुरोध किया था और धन का प्रलोभन भी दिया था, परन्तु कन्या जयसेन से विवाह करने को तैयार नहीं थी और बूढ़ा बाप कन्या की बात टाल न सका।

सम्र ट्—तो फिर ?

महासंत्री—कन्या शायद किसी अन्य युवक से प्रेम करती थी। वृद्ध ने कहा कि उस युवक का कुछ पता नहीं चल रहा है ; । क ो जयसेन ने बलपूर्वक अपने यहाँ मंगा लिया है ।

सम्राट्--तो फिर आपने अब तक मुझसे क्यों नहीं कहा ?

महासंत्री—मैं अब तक मामले की स्वयं खोज कर रहा था।

सम्राट्—त ो आपकी खोज का क्या परिमाण रहा ?

महामत्री—आरोप कुछ सच ही जान पड़ता है। बू ा रोज आकर मेरे यहाँ धरना देकर बैठ जाता है। जयसेन ने शायद उसे भी धमकी दी है।

सम्राट्—[जोर से] कोई है !

[प्रतीहारी प्रवेश करता है]

प्रतीहारी—सम्राट् की जय हो ?

सम्राट्—नायक बलगुप्त को बुलाओ।

[प्रतीहारी जाता है]

सम्राट्-(महामंत्री से) आपने ऐसे महत्व पूर्ण मामले को इतनी देर रोक कर उचित नहीं किया। यह कोई जंगल है या विक्रम की अवन्ति !

[बलगुप्त प्रवेश करता है और अभिवादन करके खड़ा हो जाता है]

सम्राट्-बलगुप्त, अपने कुछ अच्छे चुने हुए आदमियों को लेकर जाओ और अभी महानायक जयसेन को बन्दी बना लो और आज शाम को उसे राजसभा में उपस्थित करो।

[बलगुप्त जाना चाहता है]

महामंत्री-ठहरो बलगुप्त; महाराज आप जयसेन को बन्दी बनाने की आज्ञा दे रहे हैं। परन्तु अब जयसेन को बन्दी बनाना तथा दण्ड देना इतना आसान नहीं है। सारी अवन्ति उसे पुत्र के समान प्यार करती है ।

सम्राट्-(क्षणभर विचार कर) अच्छा, यह बात है ! तो बलगुप्त तुम मेरे सारे अंगरक्षक दल को साथ ले जाओ। राजसत्ता का प्रतीक गरुड़ध्वज साथ रखो और यदि कोई प्रतिरोध करे तो उसे समाप्त कर दो। अभी तक देश पर विक्रम का शासन है, जयसेन का नहीं। मेरा ख्याल है कि एक आदमी को बन्दी बनाने के लिये हमें सेना की आवश्कता नहीं पड़ेगी।

[बलगुप्त जाता है]

महामंत्री-सेना की आवश्कता पड़ भी सकती है; कारण कि जयसेन एक आदमी नहीं है। वह लोकप्रिय अधिकारी तथा

महानायक भी है।

सम्राट्–तो तुम्हारा खयाल है कि लोग जयसेन के पक्ष में विक्रम का विरोध भी कर सकते हैं?

महामंत्री–इसकी संभावना तो नहीं है; पर हाँ दण्ड देते हुए कुछ बावैला तो खड़ा हो ही सकता है।

सम्राट्–यदि खुली राजसभा में विचार करने के बाद अपराध प्रमाणित हो गया, तो जयसेन को दण्ड भोगने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं है। खैर, तुमने सावधान कर दिया यह ठीक ही किया। यह सत्य है कि अवन्ति सारे देश की राजधानी है, पर यह भी सत्य है कि अवन्ति सारे देश की तुलना में 'कुछ भी नहीं' के बराबर है। देश के न्याय की रक्षा देश की शक्तियाँ ही करेंगी। अच्छा, राजसभा से कुछ पहले ही उस वृद्ध को लेकर एक बार यहाँ आना।

[महामंत्री जाता ।]

कोई है!

प्रतीहारी—[प्रवेश करके] सम्राट् की जय हो।

सम्राट्—किसी को भेजो कि जाकर सेनापति विग्रहवर्मा को बुला लाये।

प्रतीहारी—जो आज्ञा [जाता है।]

सम्राट्—(स्वगत) आह जयसेन, तुमने मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। सोचा था कि एक दिन अवन्ति के सेनापति पद पर तुम्हें प्रतिष्ठित करके निश्चिन्त हो सकूंगा, परन्तु तुम अयोग्य निकले। ऊपर जितनी चमक थी, अन्दर उतनी नहीं निकली। स्वर्ण जैसा दीख पड़ता था, वैसा नहीं

था, केवल मुलम्मा ही मुलम्मा था। अधिकार ने तुम्हें पागल बना दिया, इससे स्पष्ट है कि अधिकार तुम्हें नहीं दिया जाना चाहिए।

ठीक है कि कमियां सब व्यक्तियों में होती हैं, पर महानायक में कमी नहीं होनी चाहिये; सेनापति में कमी नहीं होनी चाहिये; राजा में कमी नहीं होनी चाहिये। लम्पट को तो सैनिक भी नहीं बनाया जा सकता।

[सेनापति विग्रहवर्मा प्रवेश करते हैं और अभिवादन करके बैठ जाते हैं।]

सम्राट्—आओ, सेनापति बैठो। देश के क्या नये समाचार हैं ?

विग्रहवर्मा—महाराज के प्रताप से सम्पूर्ण देश में सुख और शान्ति है। जब शत्रु ही कोई शेष न रहा तो अब मैं क्या नया समाचार दे सकता हूँ ?

सम्राट्—सेनापति, शत्रु बनते देर नहीं लगती। मित्र ही जरा देर में शत्रु बन जाते हैं। सत्ता का लोभ ऐसा ही होता है। इसलिए सब ओर दृष्टि रखनी होगी। और सेना को इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि कहीं कोई अधिकारमत्त लोग प्रजा पर अनुचित अत्याचार तो नहीं करते। केवल बाहुबल के कारण सबल निर्बल को न दबा ले, इसी लिये तो राज्य की स्थापना की गई है।

विग्रहवर्मा—महाराज, आज कैसी बातें कह रहे हैं! गरुड़ध्वज की छाया में कोई बाहुबल अजमा ही कैसे सकता है ? और आपके सम्राट् रहते तो कोई भी अत्याचारी किसी

निर्बल पर अत्याचार नहीं कर सकता।

सम्राट्—यही तो मैं चाहता हूँ सेनापति, कि जिस विशाल भारतवर्ष की स्वाधीनता का हमने अपने रक्त से उपार्जन किया है, उसमें देशवासी स्वछन्द और निर्भय रह सकें। परन्तु यदि हमारे ही दांत और नाखून तेज हो जायेंगे तो हममें और शकों में अन्तर क्या रहेगा ? मैंने सुना है कि हमारे ही कुछ आदमी पशुता पर उतर रहे हैं। आज दोपहर बाद ही अवन्ति की सड़कों पर बीस हजार घुड़सवार सेना खड़ी कर दो। आज शाम को मैं राजसभा में एक महत्वपूर्ण अपराधी का न्याय-विचार करूंगा। महामंत्री का कथन है कि उस अपराधी को दण्डित करने की दशा में अवन्ति विद्रोह कर सकती है। तुम्हें तो मालूम ही है कि मैं निरपराध को अकारण दण्ड नहीं दूंगा, परन्तु यदि उसका अपराध प्रमाणित हुआ तो उसे दण्डित करना ही है, भले ही अवन्ति ही नहीं, सारा भारतवर्ष विद्रोह कर दे।

विग्रहवर्मा—महाराज वह कौन भाग्यहीन व्यक्ति है, जिस पर आपका ऐसा रोष है ?

सम्राट्—मेरा रोष नहीं सेनापति, मैं तो उसे स्नेह ही करता हूँ। मैंने तो उसे स्वयं महानायक बनाया था। परन्तु आज न्याय उस पर कुपित है और विक्रम का स्नेह उसकी कुछ रक्षा नहीं कर सकता।

विग्रहवर्मा—जयसेन ? हाँ, तब तो शायद अवन्ति विद्रोह कर सकती है। परन्तु क्या अपराध बहुत ही गंभीर है ?

सम्राट्—इसका निर्णय तो आज राजसभा में ही होगा। अच्छा, तुम पूर्णतया सुसज्जित सेना को बुलाकर नगर में यथा

स्थान खड़ी कर दो।

[बलगुप्त प्रवेश करता है]

सम्राट्—क्यों सब ठीक हो गया ?

बलगुप्त—महाराज के प्रताप से सब ठीक ही हो गया।

सम्राट्—यह हाथ पर पट्टी कैसी बंधी है बलगुप्त ? क्या उसने कुछ प्रतिरोध किया था ?

बलगुप्त—जयसेन ने स्वयं तो प्रतिरोध नहीं किया, पर जब हम उसे बन्दी बना कर लाने लगे तो उसके कुछ सैनिकों ने प्रतिरोध किया था। उनमें से दो तो मारे गये, बाकी आठ को बन्दी बना लाया हूँ।

सम्राट्—ठीक किया ! सेनापति, अब एक सैनिक टुकड़ी तुरन्त जयसेन के घर पर घेरा डालने के लिये भेज दो।

बलगुप्त—अभी तो पांच सैनिक मैं अपने छोड़ आया हूं।

सम्राट्—ठीक है। पर एक पूरी टुकड़ी जल्दी पहुँचनी चाहिये।

विग्रहवर्मा—जो आज्ञा। (उठ खड़े होते हैं और अभिवादन करके बाहर चले जाते हैं।)

सम्राट्—बलगुप्त, तुम भी जाओ; विश्राम करो। सायंकाल राजसभा में भी उपस्थित होना है। तुम्हें चोट अधिक तो नहीं आई ?

बलगुप्त—जी नहीं, बिलकुल साधारण है।

(जाता है।)

सम्राट्—यह नायक भी अद्भुत है! आधा विक्रम तो मुझे इसने बनाया हुआ है। यदि यह न होता तो मैं न जाने कब किस युद्ध में समाप्त हो गया होता। परन्तु छाया की भांति इसके सदा साहचर्य ने किसी भी आघात को मुझ तक नहीं पहुंचने दिया। कितना ही यत्न किया कि इसका कुछ उपकार कर सकूं; परन्तु लगता है कि जैसे उसका उपकार किया ही नहीं जा सकता। जो कुछ उसके पास है, उससे अधिक वह लेने को किसी भांति तैयार ही नहीं। वह इसी को अपना परम उपकार मानता है कि मैं एक के बाद एक, उसी के उपकारों का बोझ चुपचाप अपने सिर पर लादता जाऊं। ओह, यह मध्याह्न की भेरी बज रही है; आज बहुत देर हो गई।

[उठ कर चला जाता है।]

*

दृश्य—२१ वां

स्थान—अवन्ति की राजसभा

समय—सायंकाल में कुछ देर है।

[सभाभवन लोगों से खचाखच भरा हुआ है। अनेकानेक उच्चाधिकारी अपने स्थानों पर बैठे हुए हैं। सब लोगों के पीछे दीवार के साथ सटे हुए सशस्त्र सैनिक खम्भों की तरह अचल भाव से खड़े हुए हैं। नीचे बैठे हुए नागरिक आपस में बातें कर रहे हैं।]

एक नागरिक—महानायक जयसेन का न्याय-विचार होगा, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

दूसरा नागरिक—सारी अवन्ति को तो मालूम है और तुम मुझसे पूछते हो कैसे मालूम हुआ !

तीसरा नागरिक—आज सवेरे ही आकर नायक बलगुप्त ने महानायक को बन्दी बना लिया था। मैं तो तब वहीं था। दो घंटे तक जमकर लड़ाई हुई; बीसियों आदमी मारे गये, तब कहीं जाकर महानायक बन्दी बना। देखा नहीं, आज शहर में

एकाएक कितनी सेना आ जमी है ! सो क्या यों ही। भइया जी, मैं कभी कच्ची खबर नहीं रखता। बस आंखोंदेखी बात कहता हूं, आंखों देखी।

पहला नागरिक—कुछ यह भी मालूम हुआ कि महानायक का अपराध क्या था ?

तीसरा नागरिक—देखो भइया जी, झूठ तो बोलूंगा नहीं; जैसा सुना है, वैसा बताए देता हूँ; फिर भी ठीक न हो तो पाप मुझे नहीं लगेगा। तो बात यह है कि महानायक जयसेन अवन्ति में बहुत लोकप्रिय हुए जा रहे थे। सो सम्राट् विक्रमादित्य को यह डर लगा कि कहीं कल महानायक ही सम्राट् न बन बैठे। इसीलिये कांटा निकालने की कोशिश हो रही है।

दूसरा नागरिक—पर सम्राट् को डर किस बात का ? महानायक लाख लोकप्रिय हो, पर वह सम्राट् के तो पांव की धूल बराबर भी नहीं। सम्राट् विक्रमादित्य के मुकाबले में तो कोई उसे कौड़ी के दाम भी न लेगा। और फिर सम्राट् कोई अकेले ही तो नहीं हैं। महामंत्री है, सेनापति है और सबसे बढ़कर बलगुप्त है। सम्राट् का अनिष्ट चाहने वाला उसके हाथ से कहीं बच सकता है ? तुमने भी मित्र, क्या बेपर का कौवा उड़ाया है !

तीसरा नागरिक—ओह, देखो वे लोग आ पहुंचे।

[सम्राट्, महामंत्री, तथा सेनापति प्रवेश करते हैं। सभा के लोग खड़े होकर अभिवादन करते हैं और फिर सब यथास्थान बैठ जाते हैं।]

सम्राट्—क्यों महामंत्री जी, आज का कोई और काम है ?

महामंत्री—महाराज, पारसीक राजा का भेजा हुआ एक दूत आया है। यदि आपकी आज्ञा हो तो पहले उसका संदेश सुन लिया जाय।

सम्राट्—अच्छा पहले उसी को बुलाओ।

[थोड़ी देर बाद तीन चार भृत्यों द्वारा उपहार उठवाये हुए पारसीक दूत प्रवेश करता हैं।]

दूत—[अभिवादन करके] महाराज, हमारे महाराज ने आपके गुणों की बहुत प्रशंसा सुनी है। आपके साम्राज्य की सीमाएं यद्यपि हमारे राज्य की सीमाओं को नहीं छूतीं, परन्तु फिर भी हमारे महाराज आपके साथ मित्रता के लिये उत्सुक हैं। उन्होंने यह कुछ तुच्छ उपहार महाराज की सेवा में भेजा है।

[उपहार समर्पित करता है। महामंत्री ढंके हुए उपहार का आवरण हटा कर सम्राट् के सामने प्रस्तुत करते हैं।]

सम्राट्—दूत, अपने महाराज से कहना कि मैं उनके सद्भाव का आदर करता हूं। मित्रता चाहने वाले सभी व्यक्तियों का विक्रमादित्य मित्र है। मेरी ओर से भी तुम यह उपहार ले जाकर अपने महाराज को देना।

[कोषाध्यक्ष लाकर उपहार प्रस्तुत करता है। महामंत्री उठा कर दूत को देते हैं। वह अपने भृत्यों को उठाने के लिये दे देता है।]

दूत—महाराज, अवन्ति तथा अवन्तिपति के बारे में जो कुछ सुना था, वह सब सत्य पाया। हमारे महाराज आपके इस प्रेमभाव के लिये परम अनुगृहीत होंगे। [अभिवादन करके

जाता है।]

महामंत्री—महाराज, अवन्ति के महानायक जयसेन के के विरुद्ध कुछ गंभीर आरोप हैं; उनका विचार करने की कृपा करें।

सम्राट्—जयसेन को उपस्थित करो।

[महामंत्री संकेत करते हैं और नायक बलगुप्त कुछ सैनिकों के साथ बन्दी जयसेन को लेकर प्रवेश करता है।]

महामंत्री—अवन्ति के महानायक जयसेन, जब तक तुम राजसभा में अभियुक्त होकर न्याय के लिए उपस्थित हो, तब तक के लिए तुम्हारा पद और तुम्हारी उपाधि छीन ली जाती है। तुम्हारे विरुद्ध अवन्तिकी शान्तिप्रिय प्रजापर अमानुषिक कठोरता करने का अभियोग है। नायक बलगुप्त, वादी को प्रस्तुत करो।

[बलगुप्त जाता है और एक वृद्धपुरुष को लेकर आता है।]

महामंत्री—(वृद्ध से) तुम्हें जयसेन से कोई शिकायत है, तो सम्राट् से निवेदन करो तुम्हारे साथ न्याय किया जायगा।

वृद्ध—[कांपते हुए] मुझे? मुझे जयसेन से कोई शिकायत नहीं है।

[सारी सभा में सनसनी फैल जाती है। लोग अर्थभरी निगाहों से एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं।]

महामंत्री—(चौंककर) क्या कहा; तुम्हें जयसेन से कोई शिकायत नहीं है?

वृद्ध—महाराज, मुझे क्या शिकायत हो सकती है? आप तक पहुंचा था, तब तो मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा है

और यहाँ कुछ कहूंगा, तो शायद मेरा शरीर उतना सह भी न सकेगा।

सम्राट्— तुम्हें कष्ट उठाना पड़ा है ? किसने तुम्हें कष्ट दिया ?

वृद्ध— मैं महामन्त्री के पास अपनी प्रार्थना लेकर पहुंचा, इसे महानायक ने ही बुरा माना था और इसी से उनके अनुचरों ने मेरी जो दुर्दशा की उसका साक्षी मेरा शरीर है महाराज !

सम्राट्— परन्तु अब तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम्हें जो शिकायत हो उसे निर्भय कह सकते हो।

वृद्ध— पर महाराज मैं कहूँ भी क्या ? अपने ही अपमान और लांछनाकी कथा को इस भरी सभा में कैसे सुनाऊं ? महाराज इस पापिष्ठ जयसेन ने मेरी एक मात्र कन्या को मुझसे बलपूर्वक छीन लिया है और जिस युवक से मैं उसका विवाह करना चाहता था, उसकी इसने हत्या करवा दी है। और मैं इतना अभागा हूँ कि इसके रक्त से अपनी तलवार को रंग न सका।

सम्राट्— क्यों जयसेन, क्या ये आरोप सच हैं ? तुम इन अपराधों को स्वीकार करते हो या तुम्हें कुछ कहना है।

जयसेन— महाराज, आपके सामने झूठ नहीं बोल सकता। ये सब बातें सच हैं। ये सभी अपराध मुझसे हुए हैं।

[सभा क्षण भर स्तब्ध रह जाती है। सम्राट् कुछ विचार मग्न से हो जाते हैं। फिर सहसा चौंक कर]

सम्राट्— तो फिर जयसेन, तुमने गम्भीर अपराध किया है। राज्याधिकारी ऐसा अपराध करे, यह भंयकर बात है। यदि रक्षक ही डाकू बन जायंगे तो देश की व्यवस्था चलेगी कैसे ?

इसलिये तुम्हें अपने प्राण देकर इस महान अपराध का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। सेनापति, कल सायंकाल जयसेन को प्राणदण्ड दिया जाय। बलगुप्त, बन्दी को ले जाओ। और कल जिन सैनिकों ने जयसेन के पक्ष में राजकीय ध्वज के विरुद्ध युद्ध किया था उन सबको भी प्राणदण्ड दिया जाय।

[सभा में हलचल और गुनगुनाहट सी मचने लगती है]

सम्राट्— [ऊंचे और तीक्ष्ण स्वर में] क्यों क्या बात है?

कुछ नागरिक— [सम्मिलित आवाज में] हम महानायक के प्राणों की भिक्षा चाहते हैं।

सम्राट्— अपराधी पर दया नहीं की जा सकती।

नागरिक— सारी अवन्ति उनके लिये क्षमा चाहती है।

सम्राट— सारी अवन्ति ही नहीं, यदि सारा देश भी अपराधी के प्राणों की रक्षा चाहे, तो वह नहीं हो सकती। न्याय जैसा पवित्र कर्तव्य प्रजा के अविवेकपूर्ण हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता।

[सभा में शोर गुल बढ़ने लगता है]

यह सभा सार्वजनिक विवाद की जगह नहीं है, इसलिये इसके अन्दर यहां की व्यवस्था का ही पालन होना चाहिये।

[ऊपर का वाक्य समाप्त होते ही दीवारों के साथ चिपके खड़े हुए सैनिक एकदम कुछ कदम आगे बढ़कर लोगों के बिलकुल बीच में आ खड़े होते हैं और सभा में एकदम सन्नाटा छा जाता है।]

जयसेन का अपराध बहुत गम्भीर है। यह ठीक है कि उसने अवन्ति के लिये बड़े बलिदान किये हैं और उनसे उसने

सबके हृदय में स्थान बना लिया है। उसके कारण उसे आदर, मान तथा पदवृद्धि मिली है। पर इससे किसी का भी निर्बल पर अत्याचार करने का अधिकार सिद्ध नहीं हो सकता। यदि हम सत्कार्यों के लिये सम्मान देते हैं तो दुष्कार्यों को बिना दण्ड दिये कैसे छोड़ सकते हैं। इसलिये आप लोग शांतिपूर्वक जायें। और यह सब कोई जान रखें कि अपराधी की प्राणरक्षा के लिये बलप्रयोग करने से बढ़कर मूर्खता और कुछ नहीं होगी।

[प्रजा शांतिपूर्वक जाती है]

सम्राट्—(जयसेन से) जयसेन, मुझे आशा है कि तुम इस दण्ड को वीरतापूर्वक सह सकोगे।

जयसेन—महाराज, मैं अवन्तिपति को पहचानता हूँ। इस दण्ड को मैं अपना कर्तव्य समझ कर ही ग्रहण करूंगा।

[बलगुप्त जयसेन को ले जाता है। सम्राट् और महामन्त्री के सिवाय सब जाते हैं।]

महामंत्री—महाराज, जब आपको इतना क्लेश हो रहा है और सारी प्रजा भी चाहती है, तो जयसेन को क्षमा नहीं किया जा सकता क्या ?

सम्राट्—मंत्रिवर, क्या न्याय मेरी, आपकी या प्रजा की धरोहर है, जो चाहे जिसे दिया और चाहे जिसे न दिया। न्याय पर सारा दावा जयसेन का ही तो नहीं, उसका भी तो है, जिसकी कन्या अपहृत, लांछित और तिरस्कृत की गई है। न्याय की अधिक आवश्यकता तो उसी के लिये है। और अवन्ति के न्याय के हाथ इतने मजबूत हैं, कि उनमें जो फंस जाय, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो बचकर नहीं निकल

सकता। और यही अवन्ति का गौरव है।

महामन्त्री— तो क्या प्रजा की इच्छा का कुछ महत्व ही नहीं है ?

सम्राट्— 'प्रजा की इच्छा' जैसी कोई चीज कभी होती ही नहीं मंत्रिवर ! जनसाधारण के पास न तो इन सब बातों के विचार के लिये अवसर होता है और न अपनी इच्छा प्रकट करने के लायक उत्साह ही। परन्तु कुछ धूर्त लोग अपना मतलब साधने के लिये 'प्रजा की इच्छा' और 'प्रजा के अधिकारों' का ढोल पीटना प्रारम्भ करते हैं और अपनी इच्छाओं को प्रजा की इच्छा का रूप देकर पूरा करवाना चाहते हैं। प्रजा सदैव ही भावुक और मूर्ख होती है और वह इन धूर्तों के बहकावे में आजाती है। इस प्रकार की प्रजा की, इस प्रकार की इच्छाओं का महत्व मैं खूब समझता हूँ और न्याय सरीखे पवित्र और उच्च कर्तव्य में उनकी बाधा एक क्षण भी मानने को तैयार नहीं हूँ।

महामंत्री— और यदि प्रजा विद्रोह करदे तो ?

सम्राट— मैं अभी तो कह रहा था कि प्रजा अपने आप विद्रोह बहुत कम, कभी कभी ही करती है। प्रजा के विद्रोह की आड़ में और बहुत सी शक्तियां काम करती हैं। सो जिन सेनाओं के बल पर मैंने दिग्विजय की थी, उनके लिये ऐसे विद्रोह को दबाना चुटकी भर का काम है। पर शायद आप यह कहना चाहते हैं कि यदि वे सेनाएं भी विद्रोह कर दें और मेरा साथ न दें तो मैं क्या करूंगा ?

महामंत्री—जी हां।

सम्राट्—यदि ऐसा ही कोई क्षण आ जाय, जिसमें कि मुझे अपना किया हुआ न्याय ठीक लगे और उसका पालन करवाने के लिये मेरे पास शक्ति न हो, तो मैं अपने उस आदेश को स्वयं कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हुए मर जाना स्वीकार करूंगा, परन्तु तुम्हारी इस तथाकथित प्रजाशक्ति के भावोद्रेक से भरे आदेश को मानना मेरे लिये कठिन होगा।

महामंत्री—महाराज, जब आपकी ऐसी ही पवित्र आस्था है तो महाकाल की कृपा से आपके न्याय की गाथा सदा अमर रहेगी!

★

दृश्य—२२ वाँ

स्थान—अवन्ति की राजसभा

समय—सायंकाल

[सम्राट् तथा अन्य सभासद यथास्थान बैठे हैं। सभा का वातावरण आनन्द तथा उल्लास से पूर्ण है। सभा में विक्रम के आठ रत्न उपस्थित हैं, केवल महाकवि कालिदास का स्थान खाली है।]

सम्राट्—अमात्यवर, शत्रु पराजित हुआ, युद्ध समाप्त हुआ; सब जगह शांति हो गई, किन्तु हमारे महाकवि कालिदास का कुछ पता नहीं चला। मुझे उनका यह रिक्त आसन बहुत अखरता है।

महामंत्री—ठीक है महाराज, उनके बिना सारी सभा सूनी सूनी मालूम पड़ती है। उनके लिए कितनी खोज करवाई, परन्तु कोई फल नहीं हुआ।

सम्राट्—सत्य विद्याओं के इतने प्रकाण्ड विद्वान् इस सभा की शोभा को बढ़ाते हैं, परन्तु सत्य में असत्य की पुट

देकर उसे सुन्दर और प्रिय बना देने वाला हमारा कवि आज नहीं है। सत्य की निन्दा या उपेक्षा करना नहीं चाहता, पर फिर भी मन न जाने क्यों कवि के उस असत्य को ही अधिक प्रश्रय देना चाहता है।

महामन्त्री—और अभाव में लालसा बढ़ भी जाती है।

[प्रतीहारी प्रवेश करता है।]

प्रतीहारी—सम्राट् की जय हो। महाकवि कालिदास पधारे हैं।

सम्राट—कौन, कालिदास? अभी ले आओ।

प्रतीहारी—जो आज्ञा। (जाता है।)

महामन्त्री—महाकवि की आयु लम्बी है, जो चर्चा होते होते ही आ पहुंचे।

[कालिदास प्रवेश करता है। वेष मलिन, बाल सूखे और बिखरे हुए हैं, परन्तु शरीर में प्रसन्नता जैसे समा नहीं रही है।]

कालिदास—सम्राट् की जय हो!

सम्राट्—(उठ कर आलिंगन करते हैं) कहो कालिदास, इतने दिन कहां रहे? और तुमने यह वेष कैसा बनाया है? एक दम भिक्षु बन गये दीखते हो?

कालिदास—[बैठते हुए] भिक्षु तो नहीं बना महाराज, पर हां साधना की कन्दरा में प्रवेश कर गया था और जब आज समाधि टूटी है, तो सीधा यहीं आ रहा हूं।

सम्राट—कुछ सिद्धि भी प्राप्त हुई? अभी तुम्हारी ही चर्चा हो रही थी! कहां रहे, कुछ बताओ तो सही।

कालिदास—महाराज, जब युद्ध समाप्त हुआ, तो लगभग तभी मां सरस्वती का आदेश आ पहुँचा और तब से अब तक उसी आदेश का पालन करते करते यह सिद्धि प्राप्त करके लाया हूं (एक भोजपत्रों की पोथी दिखाता है।)

सम्राट्—तो यह कहो कि काव्य लिखने में मग्न थे; पर यह क्या काव्य लिखा है ?

कालिदास—काव्य नहीं महाराज, महाकाव्य। जिसमें महान वीरों की स्तुति हो वह महाकाव्य ही तो होगा। मैंने ऐसा ही महाकाव्य लिखा है। जिन्होंने पवित्र भारतभूमि से अत्याचारियों को मार भगाने में अपना रक्त बहाया है, उन्हें मैंने सदा के लिए अमर बना दिया है।

सम्राट्—मुझे तुम्हारी बातों पर अक्षरशः विश्वास है। पर हमें उस महाकाव्य का रस कब मिलेगा ?

कालिदास—जब महाराज आज्ञा करें तब! रचना सम्पूर्ण होते ही कलाकार तो रसिकों को खोजता है और फिर जब प्रवीण मर्मज्ञ मिल जांय तो इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है ?

सम्राट्—तो फिर शुभस्य शीघ्रम्!

कालिदास—महाराज, सम्पूर्ण महाकाव्य तो बड़ा है; अभी उसमें से भारत के सम्राट् की दिग्विजय का कुछ अंश सुनाता हूँ;

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।१।

---

१. उसने अपने देश को द्रोहियों से शून्य करके, पड़ौसी राजाओं को विश्वस्त मित्र बना कर छः प्रकार की सेना लेकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्
कपोलपाटलादेशि बभूव तद्विचेष्टितम् । २ ।

महामंत्री–वाह, किस सुन्दरता से बात कही है !

कालिदास—

विनयन्ते स्म तद्योधाः मधुभिर्विजयश्रमम्
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलय भूमिषु । ३ ।

सम्राट्—यह पुष्पपुर का चित्र है !

कालिदास—

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ।४।

विग्रहवर्मा–सुन्दर ! वे दाढ़ियों वाले कटे हुए मुण्ड सचमुच शहद के छत्ते मालूम होते थे।

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः
बालातपमिवाब्जाना मकालजलदोदयः । ५ ।

---

२. पतियों को मार डालने में प्रकट हुए उनके पराक्रम का फल हूणों की स्त्रियों के रोने से लाल हुए गालों में दीख पड़ा।

३. उसके योद्धा अंगूर लताओं के कुंजों में बिछे हुए सुन्दर चर्मासनों पर बैठकर अंगूर के आसव से अपनी विजय की थकान उतारते थे।

४. अपने तीरों से म्लेच्छों के दाढ़ी वाले सिरों को काट कर उसने भूमि को पाट दिया। वे सिर मधुमक्खियों से भरे हुए छत्तों के समान दीख पड़ते थे।

५. वह यवनियों के मुखकमलों की शोभा बढ़ाने वाले आसव-मद को न सह सका; मानों बिना ऋतु के बादल ने कमलों को खिलाने वाली सूर्य की धूप को ढंक लिया हो।

(साधुवाद का कोलाहल सा मच उठता है।)

सम्राट्—इस उपमा में तुमने पहली को मात कर दिया! सुन्दर रहा!

कालिदास—

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः
दुधुवुर्वाजिनस्कन्धां लग्नकुंकुमकेसरान्। ६।

महामंत्री—यह कश्मीर का वर्णन है।

सम्राट्—सुन्दर है!

कालिदास—

वंगानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्
निचखान जयस्तम्भान् गंगा स्रोतोन्तरेषु सः। ७।

(फिर साधुवाद का शोर मचता है। शोर रुकने पर।)
महाराज, इसी प्रकार पूरा महाकाव्य लिखा है। सब संस्कृतमें है। परन्तु साथ ही भारतवर्ष की लोकभाषा में भी मैंने लोकरंजन के लिये कुछ लिखा है।

महामन्त्री— वह भी सुनाइये कवि जी। अधिकांश प्रजा

---

६. सिन्धु नदी के तीर पर लोट लोट कर उसके घोड़ों ने अपनी थकान मिटाई। उसके बाद वे कुंकुम और केसर से रंगे हुए अपने कन्धों को झाड़ने लगे।

७. उसने नाव चलाने में निपुण बंगवासियों को बल से उखाड़ कर गंगा की धाराओं के बीच के प्रदेशों में अपने जयस्तम्भ गाड़ दिये।

सूचना— ये श्लोक महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंश' के चौथे सर्ग के हैं।

तो उसी को सुनना चाहती हैं।

सम्राट्— महाकवि, अवसर मिलने पर मैं तुम्हारे इस संस्कृत-महाकाव्य को आद्योपान्त सुनूंगा। मुझे यह अद्भुत प्रतीत हो रहा है। पर अभी प्रजा के रंजन के लिये लोकभाषा वाली रचना सुनाओ।

कालिदास—

औ' तब सहसा विक्रम जागा;
जग उठी चेतना जनता की
जागे अवन्ति के सब योद्धा,
औ जागे सहसा महाकाल!
देखा रिपु की सेना आती;
मानों हो बहिया बरसाती
अत्यन्त प्रबल, अतिशय विशाल;
कर रही सभी कुछ आत्मसात,
वह नगर नगर, वह ग्राम ग्राम
थी जीत रही; लुट रहे नगर
धू धू करके जल रहे ग्राम।
वे जय के मद से अन्धे शक
थे अबलों पर करते प्रहार;
थी दया नहीं सीखी उनने
था नहीं तनिक उनमें विचार;
भीषण से भीषण औ नृशंस
व्यवहार किया असमर्थों से;
था थर थर थर थर कांप रहा
आतंकित हो सारा भारत!

'तुम इन्हें प्रेम से करो विजय'
बोला आ बूढ़ा कात्यायन।

'चुप रहो, मूर्ख, कायर, द्रोही'
यों सिंह सदृश गरजा विक्रम;
औ उसकी छाती तड़प उठी
जल उठे दृगों में अंगारे,
बोला, 'सब सेना सजे अभी!'

औ उसके कहने से पहले
कब कब के रण के अभिमानी
असियां ले लेकर निकल पड़े
अजमाने को उनका पानी।

हींसे घोड़े, गरजे हाथी;
रवि की किरणों में चमक उठे
लोहू के चिर प्यासे भाले;
वे प्राण दान के मतवाले
आगे चढ़ दौड़े घुड़सवार!
वे विश्वजयी सैनिक दौड़े।

वह कार्तिकेय सा सेनापति
वह सबसे आगे बढ़ा स्वयं।

तब शिप्रातट पर युद्ध हुआ,
पागल से बनकर लड़े हूण;

लेकिन बल विक्रम विक्रम का,
लेकिन विक्रम का रणकौशल
वे रण में सह न सके दो पल!

था महाकाल का बरद हस्त।
हट गई हार कर शक सेना
हो पूर्ण पराजित त्रस्त ध्वस्त :
उसके अवन्ति जय करने के
सारे सपने मिल गये धूल !
गरजा विक्रम केसरी सदृश
'भारत की जनता पर जिनने
हथियार उठाये हैं अपने
वीरो, उनमें से बच पाये
जीवित अब बर्बर एक नहीं।'
रिपु के पीछे अश्वारोही
फिर दौड़ पड़े उत्साहभरे ;
अपराधी शोणित से वसुधा
गीली होकर रंग गई लाल ।
तब मरने से डरने वाले ,
वे कायर, बर्बर शक नृशंस
जिनने थी अपने जीवन में
औरों पर करुणा कभी न की
करके लज्जा का परित्याग ,
हाथों से अपने शस्त्र छोड़
आ लगे मांगने दया, क्षमा
अत्यन्त दीन, हो अति विनीत।
तब दृढ़ स्वर में विक्रम बोला
'मैं कौन क्षमा करने वाला ?
मैं न्याय विधाता हूँ केवल !

वे कर सकते थे तुम्हें क्षमा
जिनका तुमने है खून पिया,
जिनके तुमने हैं प्राण लिये,
जिन पर तुमने हैं किये जुल्म।
पर शोणित रंजित हाथों को
और शोणित रंजित अधरों को
विक्रम कर सकता नहीं क्षमा।'
औ राजदण्ड फिर चला घोर
भागे अपराधी त्रस्त, भीत।
पर जिन जिन के थे हाथ लाल,
मुंह काला था जिन जिन का भी,
वे भग न सके, वे बच न सके
उन सबके ऊपर गिरा वज्र;
हो गया देश सब निरातंक!
पर जो जागी थी महाशक्ति
वह रुकी नहीं; वह बढ़ी और
कर पार व्यास, सतलुज, रावी
औ फिर चिनाव, झेलम नदियाँ,
कर पार महानद सिन्धु और
फिर दर्रा ख़ैबर, सुलेमान
के पार गई वह निर्विरोध।
वे असम साहसी घुड़सवार
हाथों में गरुड़ध्वज को ले
चढ़ गये शैल हिन्दूकुश पर,
ध्वज दिया उन्होंने वहां गाड़।

[एक पतला सा पर्दा सामने खिसकता जाता है और उसके पीछे से कालिदास की आवाज सुनाई पड़ती रहती है] ।

मच गया शोर दुनियाँ भर में,
जागा है कोई दुर्निवार
जग में अजेय अद्भुत विक्रम ।
तेजस्वी भास्कर के समान
विक्रम का भासित हुआ तेज ।
वे बड़े बड़े उद्धत नरेश,
जिनकी सेनाएं थीं विशाल,
था गर्व जिन्हें अपने बल पर,
हो गये आप से आप विनत ।
लहराया गरुड़ध्वज अबाध;
हिन्दूकुश से ले हिन्द चीन
औ हिन्द सिन्धु से हिमगिरि तक
उसकी छाया फैली प्रशान्त !
'जय जय शकारि, जय जय विक्रम'
गरजी उत्साह भरी सेना
'जय जय विक्रम, जय महाकाल'
बोली जनता उल्लास चपल !

सामूहिक ऊंची आवाज—

जय जय विक्रम जय महाकाल !
जय जय विक्रम जय महाकाल !

[यवनिका गिरती है ।]